NEELJA

DINANATH 'NADIM'

BY

Kashi Nath Dhar.

दीनानाथ 'नादिम'
व्यक्ति और अभिव्यक्ति

नीलजा

दीनानाथ 'नादिम'

व्यक्ति और अभिव्यक्ति

सन् १९८३-८४ ईस्वी

सम्पादन-संयोजन
काशीनाथ दर
मोतीलाल 'प्रमोद'



जम्मू-कश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
श्रीनगर (कश्मीर)

नीलजा
(विशेषांक)

जम्मू-कश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, लाल चौक, श्रीनगर (कश्मीर) के लिए संयोजक मोतीलाल 'प्रमोद' द्वारा प्रकाशित

(प्रस्तुत संकलन में लेखक महोदयों के व्यक्तिगत मत अंकित हैं, जम्मू-कश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, श्रीनगर इनके लिए उत्तरदायी नहीं है।)

प्रकाशक : जम्मू-कश्मीर राष्ट्र भाषा प्रचार समिति,
लाल चौक, श्रीनगर (कश्मीर)
वितरक : सीमान्त प्रकाशन
६२२, कूचा रूहेला खां
दरियागंज, नई दिल्ली-११०००२
आवरण : फ़ज़ीलत
छाया : टी० माधव राव
मूल्य : तीस रुपये मात्र
मुद्रक : शान प्रिंटर्स, दिल्ली-११००३२

DINANATH 'NADIM' (Vyakti Aur Abhivyakti)
J & K Rashtra Bhasha Prachar Samiti
Lal Chowk, Srinagar (Kashmir)

Price Rs. 30.00

पहली बात

इस बार 'नीलजा' की अथक लोल-लहरियों की मस्तानी थिरकन में आपके देखने, सुनने तथा परखने के लिए कविवर 'नादिम' की प्रगतिशील प्रतिभा का अदम्य संगीत प्रस्तुत किया गया है। इसका प्रमुख कारण 'नादिम' महोदय द्वारा स्वतन्त्रता के बाद कश्मीर में उभरती-सँवरती आस्थाओं का यथार्थ प्रतिपादन तथा सार्थक पोषण है; ऐसे संवेदनशील कवि के व्यक्तित्व और कृतित्व को प्रकाश में लाना हमारा ध्येय ही नहीं, अपितु धर्म भी है। नवीन के प्रति उनका आग्रह सर्वविदित है और कश्मीरी भाषा का मात्र देशीय माध्यम अपनाकर इस सिद्धहस्त कवि ने 'नये कश्मीर' का खुले दिल से स्वागत करके जनता को भी इन नवीन मूल्यों के प्रति जागरूक बनाने का भगीरथ संकल्प किया है।

प्रायः देखा जाता है कि सैकड़ों वर्ष एक ही वातावरण में चाहे उसमें कितनी ही कटुता क्यों न हो, लगातार पलकर जनमानस इस कटुता को लाचारी में मिठास की संज्ञा देता है, और इसे बदलने की ओर आसानी से आकृष्ट नहीं हो पाता, वह अपनी बेड़ियों को उतार फेंकने को वरदान के स्थान पर अभिशाप-सा समझने लगता है, अतः परिवर्तित माहौल का वरण करने के लिए परिवर्तित मानसिक खाद्य की अपेक्षा रहती है, इसी दायित्व को निभाने में 'नादिम' साहब का बड़ा हाथ रहा है, और यही उनकी महानता का रहस्य भी है। मानव स्वभाव से पुनरावृत्ति को पुनर्जागरण से अधिक श्रेयस्कर समझता आया है, 'नादिम' महोदय ने लोक-जीवन को अतीत की इस मज़बूत पकड़ से मुक्त करके उसे वर्तमान से सही नाता जोड़ने की अप्रतिम प्रेरणा दी, यह चमत्कार तो उनकी पैनी सूझ-बूझ तथा संवेदनशीलता द्वारा ही सम्पन्न हो सका, जिसका प्रगल्भ परिचय आप अगले पृष्ठों में पा सकेंगे।

दुर्भाग्य से किन्हीं कारणों से 'नादिम' महोदय की कल्पना को उजागर करने के लिए कोई भी ठोस प्रयत्न नहीं किया गया है; सरकार की वाहवाही पाकर भी वे सरकारी संरक्षण से वंचित रहे; इसका एक और कारण कविवर की लापरवाही भी है, काग़ज़ के अलग-अलग पुरज़ों पर उन्होंने अपने मानसिक उबाल को अंकित किया है और उन्हें सुरक्षित रखने का कोई प्रयत्न भी नहीं किया, निदान पत्र-पत्रिकाओं में इधर-उधर छपे गीतों पर ही पाठक को तोष करना पड़ता है। सुनने में आता है कि अब कई महानुभाव इस खोयी हुई भाव-निधि को

फिर से समेटने का आयास कर रहे हैं, जिनमें अग्रगण्य श्री मोतीलालजी साक़ी हैं, जिनका सम्बन्ध कश्मीर की कल्चरल अकादमी से है और जो स्वयं एक प्रवण-शील कश्मीरी कवि हैं। वे पिछले वर्ष साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत भी हो चुके हैं। संक्षेप में कविवर 'नादिम' ने बदलते ज़माने के मिज़ाज और तकाज़ों के अनुरूप हमारे 'इथास' (अन्तरात्मा) की पुनर्व्याख्या करके इसकी महक और ताज़गी को सुरक्षित रखा है, यही युग धर्म 'नीलमत' से बराबर आज तक कवियों तथा मनीषियों द्वारा परवान चढ़ता आ रहा है।

इसी परिवेश को ध्यान में रखते हुए हमारी कार्य-कारिणी ने इस वर्ष इसी चिरन्तन सत्य को इस सतत-सजग कवि द्वारा वाणी प्रदान कराने का निश्चय किया है और 'नीलजा' के पन्ने इसकी सुचारु परिणति के लिए वक्फ किये हैं, ताकि हिन्दी-जगत भी इनकी मेधा से जानकारी प्राप्त कर सके।

हमें विश्वास है कि ऐसी किसी रचना की अन्तिम पंक्ति स्पष्ट कारणों से लिखी नहीं जा सकती। यह एक छोटा-सा समारम्भ है जिसके कलेवर में समय पृष्ठ जोड़ता रहेगा।

हमें आशा है कि हमारे सहृदय और मननशील बन्धु इन पृष्ठों का समूचा अवलोकन करके हमें अपनी बहुमूल्य राय भेजकर कृतार्थ करेंगे, ताकि उसके प्रकाश में हम 'नीलजा' के आने वाले संस्करणों को अपेक्षाकृत अधिक ग्राह्य और उपादेय बना पायें। असल में हमारे सहृदय हितैषियों का प्रोत्साहन और आशीर्वाद ही हमारा पथ-प्रदर्शक है, विशेषकर डा० कल्ला का जिन्होंने हमारे साथ सक्रिय सहयोग करके हमें अनुगृहीत किया।

जय-हिन्दी !

क० न० द
अध्यक्ष
जम्मू-कश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार
समिति श्रीनगर

दिनांक
15 जनवरी 1984

अपनी बात

'नीलजा का प्रस्तुत अंक कश्मीर के मूर्धन्य प्रगतिशील कवि नादिम के प्रति एक सवाक् श्रद्धांजलि है। इस शुभ प्रयास का मूलभूत कारण हमारे अध्यक्ष महोदय ने 'पहली बात' में पूरी तरह वर्णन किया है ।

यह कोई लुकी-छिपी बात नहीं कि कश्मीरी कविता अब बहुत ही प्रौढ़ हो चली है जिसका सार्थक पोषण नादिम द्वारा पहले-पहल हुआ। यही कारण है कि आधुनिक कश्मीरी कविता का डोगरा-तानाशाही के प्रति एक मुखर मातम था जिसने स्वतःसिद्ध प्रगतिवाद के लिए रास्ता हमवार किया; जभी तो कश्मीरी कवियों ने शोषण, गरीबी आदि अपनी कविता के ज्वलन्त विषय बनाये और ऐसी प्रवृत्ति के जन्मदाता 'नादिम' ही थे।

प्रस्तुत अंक को सजाने-सँवारने में हमारे प्रेमियों ने हमारा काम बहुत ही सुलभ बना दिया। वास्तव में श्री मोतीलाल साकी की नादिम के प्रति अनन्य शक्ति ने हमें भी कश्मीर के इस होनहार सपूत को उजागर करने की प्रेरणा मिली। इसके अतिरिक्त श्री गुलाम रसलू सन्तोष ने हमारे उत्साह को अपने अनुभव से ठंडा होने नहीं दिया। डॉ० बद्रीनाथ कल्ला ने हमारे साथ सक्रिय सहयोग करके हमारे काम को सहज-सरल बना दिया। तदर्थ इन महानुभावों को धन्यवाद देना हमारा धर्म बन जाता है। हमारे अन्य बन्धु भी कन्धे से कन्धा मिलाकर हमारे साथ इस कारवान् में मित्र-सदृश शामिल हुए। उनका आभार स्वीकार है।

हमें आशा है कि हमारे सहृदय पाठक इस अंक को सरस-रोचक ही नहीं अपितु शिक्षाप्रद भी पायेंगे। उनका संरक्षण हमें हर समय प्राप्त होता रहेगा, ऐसा हमारा निश्चय है।

एक हृदय हो भारत जननी !

भवदीय

प्रमोद

जान-पहचान

नादिम सन्तोष की नज़रों में
नादिम अपनी नज़रों में
नादिम प्रशंसकों की नज़रों में

नादिम सन्तोष की नज़रों में

२६ अगस्त १६८३ को जम्मू व कश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के अध्यक्ष प्रो० काशीनाथ दर, श्री बदरीनाथ कल्ला तथा श्री मोतीलाल प्रमोद (मुख्य प्रचारक) ने कश्मीर के सुप्रसिद्ध कवि तथा चित्रकार श्री गुलाम रसूल 'संतोष' (नादिम के समकालीन कवि) से श्री दीनानाथ 'नादिम' के व्यक्तित्व तथा कृतित्व के विषय में कुछ प्रश्न पूछे।

सर्वप्रथम प्रो० काशीनाथ दर ने उनसे यह प्रश्न किया—संतोष साहिब ! नादिम साहिब को आप कब से जानते हैं ? उनके साथ आपका कब सम्पर्क हुआ ?

संतोष—प्रो० दर साहिब ! मैं नादिम साहिब को चिरकाल से जानता हूँ। सौभाग्य से १६५३ ई० में मेरा उनके साथ अधिक सम्पर्क हुआ। जिस समय उन्होंने 'बोम्बुर यम्बरज़ल' नामक 'ओपेरा' लिखा। तब से उनके साथ मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध हुआ। कश्मीरी अदब का जो तरक्की-पसन्द दौर था, उसमें यह सम्बन्ध उत्तरोत्तर दृढ़तर होने लगा।

प्रश्न—नादिम साहिब की कविता आपके नज़रिये से कैसी है ?

उत्तर—नादिम साहिब का स्थान प्रगतिशील कवियों में उत्कृष्ट माना जाता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि वे आधुनिक युग के उच्च कवि माने जाते हैं। मुझे **सन्** '५३ शीर्षात्मक उनकी कविता इस समय भी याद आती है। इसमें धान बेचने वाले माँझी की गिनती का उल्लेख है जो एक अनोखी कविता है। तुलनात्मक दृष्टि से यह अत्युत्तम कविता है। इनकी शब्दावली बहुत रोचक तथा आकर्षक है। उनकी कविता में यह विशेषता पाई जाती है कि उन्होंने स्थानीय प्रतीकों का प्रयोग किया है जो अन्य कश्मीरी कवियों में दृष्टिगोचर नहीं होता है। राही ने ग्रीक मैथालॉजी (Mythology) का प्रयोग अपनी कविता में किया है किन्तु नादिम की शायरी नैसर्गिक तथा जन्मजात है।

प्रश्न—आप भी कश्मीर के जाने-माने कवि हैं। आपको किस कवि से प्रेरणा मिली ?

उत्तर—मुझे सबसे पहले नादिम की 'लखचि बु लखचुन' नामक कविता से प्रेरणा मिली। बाद में मैंने 'खबर द्वा रात रातस कुस ओस' नामक कविता लिखी। इसमें व्यक्त सौन्दर्य नज़र आता है। कालान्तर में नादिम साहिब ने 'नाबद

ट्यठव्यन' नाम कविता लिखी । इसमें कलापक्ष के साथ भावपक्ष भी नज़र आता है । नादिम की यह कविता इतनी लोकप्रिय हुई कि राही ने 'तखलीक' नामक कविता इसी आधार पर लिखी ।

प्रश्न—संतोष साहिब ! आपको नादिम की कविता में क्या विशेषता नज़र आती है ?

उत्तर—नादिम की कविता उत्तेजनात्मक है। बाह्य वातावरण से उनकी कविता उद्दीप्त होती है । १६५३ ई० में जो राजनीतिक घटना कश्मीर में घटी, उस समय नादिम के साथ मैं, सोमनाथ ज़ित्शी तथा अब्दुल अज़ीज आदि थे । इस घटना से प्रभावित होकर नादिम ने अपना सिर पीटा । उस समय उन्होंने बहुत-सी क्रान्तिकारी कविताएँ लिखीं जो बहुत ही हृदयविदारक हैं ।

प्रश्न—नादिम के व्यक्तित्व के विषय में आप क्या जानते हैं क्योंकि आपका सम्बन्ध उनके साथ चिरकाल से है ?

उत्तर—नादिम साहिब अत्यन्त निर्धन थे । इस बात को सभी तो जानते हैं । उनमें यह विशेषता पाई जाती है कि वे अध्ययनशील तथा अध्यवसायी थे । जो पुस्तक उन्हें मिलती थी चाहे वह चिकित्सा सम्बन्धी हो या अन्य किसी विषय पर लिखी हुई हो, उसे वह अवश्य पढ़ते थे। बाद में वे अपनी योग्यता के कारण हमारे राज्य की संविधान सभा में भी निर्वाचित हुए । कश्मीरी पंडितों में प्राय: ऐसा दिखाई देता है कि जब वे नौकरी करने लगते हैं तो बाद में साहित्यिक कार्य की ओर ध्यान नहीं देते हैं; किन्तु नादिम इसमें अपवाद हैं। वे नौकरी में भी अपना अध्ययन जारी रखते थे । वस्तुत: इन्हीं गुणों ने उन्हें साहित्यिक क्षेत्र में आगे बढ़ाया ।

प्रश्न—कश्मीरी साहित्य में सबसे पहले कहानी किसने लिखी है ? इस विषय में प्राय: लोगों का विचार है कि सोमनाथ ज़ित्शी कश्मीरी साहित्य के पहले कहानीकार हैं । इस सम्बन्ध में आपकी क्या राय है ?

उत्तर—सबसे पहले श्री नादिम ने कश्मीरी भाषा में 'जवाबी कार्ड' नामक कहानी लिखी जो 'कोंग पोश' नामक पत्रिका में प्रकाशित हुई । बाद में इसी पत्रिका के दूसरे अंक में सोमनाथ ज़ित्शी की कहानी छप गई जिससे लोगों में भ्रान्त धारणा पैदा हो गई कि श्री ज़ित्शी साहिब ही कश्मीरी कहानी के जन्मदाता हैं। वस्तुत: नादिम ने ही कश्मीरी कहानी पहले लिखी ।

प्रश्न—नादिम का कौन-सा 'ओपेरा' प्रसिद्ध है ?

उत्तर—नादिम साहिब का पहला 'ओपेरा' 'बोंबुर यम्बरज़ल' है । यह सबसे पहले 'नीडोज़ होटल' में दिखाया गया । बाद में यह 'ओपेरा' जम्मू व कश्मीर राज्य के स्वर्गीय मुख्यमंत्री श्री बख्शी गुलाम मुहम्मद के कथनानुसार प्रदर्शनी में भी दिखाया गया। इसके अतिरिक्त 'वितस्ता' नामक उनका सुप्रसिद्ध

'ओपेरा' जम्मू व कश्मीर कल्चरल अकादमी की 'टाइगोरशाला' में हाल ही में स्टेज हुआ। इस 'ओपेरा' की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई। यह 'ओपेरा' इतना लोकप्रिय हुआ कि घाटी के अतिरिक्त यह भारत के विभिन्न राज्यों में भी दिखाया गया। इस प्रकार कश्मीरी साहित्य में नादिम साहिब का योगदान संगमील की हैसियत रखता है।

हिन्दी-रूपान्तर
डॉ० बद्रीनाथ कल्ला

मूल कश्मीरी
गुलाम रसूल 'सन्तोष'

नादिम अपनी नज़रों में

कश्मीरी साहित्य के इतिहास में दो ही कवि ऐसे हैं जिन्होंने एक नहीं बल्कि कई पीढ़ियों को प्रभावित किया है। ये दो महाकवि माता लल्लेश्वरी तथा दीनानाथ नादिम हैं। इन महापुरुषों की छत्रछाया में कश्मीरी साहित्य ने इतनी प्रगति की जिसका वर्णन करना कोई आसान बात नहीं।

संसार में कुछ लोग ऐसे होते हैं जो इतिहास की कोख से जन्म लेकर फिर इतिहास का एक भाग बन जाते हैं मगर कुछ महापुरुष ऐसे होते हैं जो नया इतिहास बनाते हैं। वह इतिहास के दास बनकर नहीं रह जाते हैं अपितु इतिहास उनके कदम चूमता है। दीनानाथ नादिम माता लल्लेश्वरी की सन्तान है जिसने अपनी माता की तरह इतिहास को अपने सांचे में ढाला और अपने पीछे-पीछे चलने पर विवश किया। जिस तरह ललद्यद के ज़माने से कश्मीरी साहित्य का इतिहास और एक युग आरम्भ होता है, उसी तरह नादिम साहिब के कारण कश्मीर के एक नये मगर महान युग का सूत्रपात होता है। उनकी आवाज़ जब उभरी तो ज़ोर से उभरी और उस आवाज की घन-गरज, नयेपन और नये अन्दाज के सामने पुरानी आवाज़ें दबकर रह गईं। नादिम की आवाज नये युग, नये स्वर और क्रान्ति की आवाज थी। यह आवाज़ ज्यों ही प्रकट हुई, इसने सब लोगों को आकृष्ट किया। नादिम ने पुरानी दीवारों को फाँदकर नये अन्दाज़ से पुकारा। गज़ल की पारम्परिक सीमाओं को पार करके उसने नई सीमाओं की रूपरेखा खींची। उनकी एक कविता 'यौवन की पुकार' ने उस समय सारे शहर में हलचल पैदा की जब कबाइली शहर तक आ पहुँचे थे और यहाँ के राजनीतिज्ञों को मुकाबले के लिए तैयार कर रहे थे। 'मुजाहिद मंज़िल' के एक अवामी जलसे में जब यह कविता नादिम साहिब ने सुनाई तो लोगों में एक नई उमंग पैदा हुई। दूसरे दिन यह कविता बच्चे-बच्चे के जिह्वाग्र पर थी। इस कविता की शैली तथा इसका भावपक्ष इतना आकर्षक है कि आज भी यह कविता पढ़ते समय रक्त नसों में तेज़ी से दौड़ता है और दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगता है—

तू कश्मीर का नवयुवक है
तुझे हल को प्रतीक बनाकर चलना है।
सारी दुनिया तुम्हारी ओर देख रही है

अपनी कमर को कस ले,
हमारे भाग्य को ऊँचा उठा ले
तू कश्मीर की शान बन जा,
तू कारवां का नेता बन जा।।

नादिम साहिब की यह कविता 'गाये जा कश्मीर' में शामिल है। इस किताब में उनकी दूसरी भी कई कविताएँ शामिल हैं। ये वह प्रारम्भिक कविताएं हैं जिन्होंने हमारे यहाँ एक नया युग प्रारम्भ किया और सम्भवतः ये ही उनकी पहली कविताएँ हैं जिन्होंने एक नये युग का श्रीगणेश किया। 'गाये जा कश्मीर' में कश्मीरी ज़बान के दूसरे कई कवियों की कविताएँ भी शामिल हैं किन्तु नादिम साहिब की शैली व ढंग बिल्कुल नया और अलग है। उनकी कविताओं में जो भाव-सौन्दर्य, प्रवाह तथा कल्पना शक्ति दिखाई देती है उसका मुकाबला आज भी कोई नहीं कर सकता। नादिम साहिब बचपन से ही क्रान्तिकारी थे। वह मार्केस्ट भी रहे। गरीबों और कमजोरों से सहानुभूति ने उन्हें उनके दुःख तथा दर्द का तर्जुमान बना दिया किन्तु वह कभी भी नास्तिक नहीं बने। पिछले दिनों एक बातचीत के दौरान उन्होंने बातों-बातों में बल दिया कि क्रान्तिकारी और साम्य-वादी होने के बावजूद वह हमेशा आस्तिक रहे। किन्तु उनसे दूसरों की यातनाएँ तथा दुःख सहे नहीं जाते हैं। यही कारण है कि एक कविता में उन्होंने शिकवा किया है—

ए भगवान ! तुम्हारी यह धरती पूँजीवादियों के लिए है
गरीबों के भाग्य में तो बस भूख ही भूख है।
जब गरीबी इन्कार पर इन्कार की वजह बने
क्या तुम्हारे वचनों पर विश्वास किया भी जा सकता है।

नादिम साहिब ने गरीबी देखी है। उन्होंने १८ मार्च १९१४ को शशियार हब्बाकदल में पं० शंकर कौल के घर जन्म लिया। बचपन में ही पिता की छत्र-छाया इनके सिर से उठ गई। उस समय नादिम साहिब की आयु नौ वर्ष की थी और यहीं से उन्होंने जीवन का संघर्ष आरम्भ किया। १९ अगस्त १९८३ को मैं नादिम साहिब के घर जो श्रीनगर में जवाहिरनगर में स्थित है, श्री मोतीलाल प्रमोद के साथ गया। नादिम साहिब अच्छी स्थिति में थे। बातों-बातों में उन्होंने अपनी ज़िन्दगी के बारे में विभिन्न घटनाओं की चर्चा की। उनकी यह बातचीत इस रूप से बहुत ही महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसके कारण हमें ऐसी बातों का ज्ञान हो जाता है जिनका कश्मीरी-साहित्य के इतिहास में विशेष महत्त्व है। मेरे विभिन्न प्रश्नों का उत्तर उन्होंने अत्यन्त उदारता और हँसते-हँसते दिया। यहाँ यही उचित प्रतीत होता है कि मैं उनकी कहानी उनकी ज़बानी सुना दूँ।

प्रश्न—नादिम साहिब ! आप अपनी प्रारम्भिक शिक्षा के विषय में कुछ

बताने का कष्ट कीजिए।

उत्तर—मैंने प्रारम्भिक शिक्षा बाबापुर स्कूल में प्राप्त की। इसके बाद स्टेट स्कूल, बाग दिलावरखां में प्रवेश पाया। वहाँ से मैट्रिक पास करके मैंने १९२९ ई० में एस० पी० कालेज श्रीनगर में प्रवेश पाया।

और यहाँ १९३१ ई० तक शिक्षा पाता रहा। उसके बाद घरेलू कठिनाइयों के कारण मुझे शिक्षा को अधूरा छोड़ना पड़ा। १९३४ में City Academy नाम की एक शैक्षणिक संस्था स्थापित की। १९३७ ई० में Newera स्कूल के स्टाफ में काम किया मगर कुछ देर बाद यहाँ से अलग हो गया। Newera स्कूल इसके बाद दो भागों में बँट गया। एक भाग खालिसा हाई स्कूल बन गया और दूसरा डी० ए० वी० स्कूल। अपनी शिक्षा को छोड़कर मेरी आय का साधन प्राइवेट रूप से पढ़ाना था। १९४० ई० में हिन्दू हाई स्कूल की नींव रखी और इसी स्कूल के द्वारा मैंने १९४० ई० में पंजाब यूनिवर्सिटी से डिग्री की परीक्षा पास की। १९४९ ई० में ईस्ट पंजाब यूनिवर्सिटी से बी० टी० की परीक्षा उत्तीर्ण की।

प्रश्न—नादिम साहिब ! कश्मीरी के इलावा आपने क्या किसी और ज़बान में भी शायरी की है ?

उत्तर—मैंने उर्दू और हिन्दी में भी शायरी की है। इन दो ज़बानों में लिखी गई मेरी कई नज़्में 'प्रताप' मैगज़ीन में छपी हैं। मगर बहुत सारा कलाम खो गया है।

प्रश्न—नादिम साहिब ! आपकी पहली कश्मीरी कविता कौन-सी है और वह कहाँ छपी है ?

उत्तर—मेरी पहली नज़्म 'मोज केशीर' (माता कश्मीर) है। यह नज़्म मैंने १९४० ई० में लिखी और दो किस्तों में 'प्रताप' मैगज़ीन में छपी है। नज़्म का एक भाग देवनागरी तथा दूसरा भाग इन्टरनेशनल रोमन में छपा है। इसके बाद मैंने १९४६ ई० तक कश्मीरी में कोई चीज़ नहीं लिखी। आरिफ़ साहिब के कहने पर मैंने १९४६ ई० में अपनी दूसरी कश्मीरी रचना 'मुचरावी बर तय दारि व्यसियें' (सखी ! खिड़कियों और दरवाज़ों को खुला छोड़ दे, वसन्त निमंत्रण पर आया है) लिखी। आरिफ़ साहिब मेरे सहपाठी भी थे और बहुत अच्छे विद्यार्थी भी।

प्रश्न—नादिम साहिब ! किन कश्मीरी कवियों ने आप पर अपना प्रभाव डाला है ?

उत्तर—मेरे घर में बचपन ही से ललद्यद और कृष्ण राजदान के 'वाख' और गीत गूँजते थे और इन्हीं दो कवियों से मैं प्रभावित हूँ।

प्रश्न—आपको यदि कश्मीरी ज़बान का जादूगर कहा जाये तो कुछ गलत

नहीं होगा। आप कृपया बताइये कि यह वाक्शक्ति आपके हिस्से में क्योंकर आई?

उत्तर—मैंने यह ज़बान अपनी माता से सीखी है। मेरी माता 'मुरन' (गाँव का नाम) की थी और उसे कश्मीरी भाषा के उद्भव तथा विकास का पूरा ज्ञान था। वह ज़बान जो मेरी शायरी की ज़बान है, मैंने अपनी माँ का स्तनपान करते हुए उत्तराधिकार में पाई है।

प्रश्न—नादिम साहिब! आपने कश्मीरी में कई नई चीजों को पहली बार पेश किया। आप कृपया इस विषय में हमें कुछ बताइए।

उत्तर—आप इस बात से पूर्णतया परिचित हैं कि मैंने कश्मीरी में पहली बार—आज़ाद नज़्म, ब्लैंक वर्स, सॉनेट, और ओपेरा लिखा है। उससे पहले इस प्रकार की चीज़ें कश्मीरी में लिखने की कोई परम्परा विद्यमान नहीं थी। इस तरह मैंने कश्मीरी में एक नई परम्परा का सूत्रपात किया।

मेरी पहली सॉनेट 'चे छय ना लोल म्याने याद तिम दोह' (मेरे मित्र! क्या तुम्हें वह दिन याद नहीं) और पहली गजल 'फल वेट्य वेट्य अंबारन रोज्या' (अनाज को इकट्ठा करके क्या ढेरों में ही रखा जायेगा), मेरी पहली ब्लैंक वर्स 'म्योन अफसान' (मेरा अफसाना) है। यह नज्म मैंने १९५४-५५ ई० में लिखी और १९५६ ई० में छप कर आई। मेरी पहली आज़ाद नज़्म है 'यि ग्यव न अज़' (आज मैं गीत नहीं गाऊँगा)। यह नज़्म मैंने १९५० ई० में लिखी। सादिक़ साहिब (जम्मू व कश्मीर के भूतपूर्व मुख्यमंत्री) ने जब यह नज़्म सुनी वह हैरान हो गये कि क्या कश्मीरी ज़बान में आज़ाद नज्में लिखने की क्षमता है? मैंने पहला 'ओपेरा' 'बोम्बुर यम्बरजल' लिखा। यह 'ओपेरा' मैंने १९५३ ई० में लिखा और इसी साल पहली बार 'निडोज़ होटल' में स्टेज किया गया। १९५६ ई० में जब मार्शल बुल्गानिन और क्रुश्चोफ कश्मीर के दौरे पर आये, उस समय यही 'ओपेरा' उनके सामने 'निडोज़ होटल' में पेश हुआ। ओपेरा के बाद प्रतिष्ठित अतिथियों ने मुझे गले लगाया और रूसी भाषा में मुझे धन्यवाद दिया जो मैं समझ न सका क्योंकि उन्होंने रूसी में बातें कीं।

'बोंबुर यम्बरज़ल' के बाद मैंने चार दिन 'ओपेरे' 'नेकी त बेदी' (नेकी और बदी), 'शुहुल कुल', (शीतल वृक्ष), 'मदन त जूल माल' (कामदेव और रति) और 'वितस्ता' लिखे। इसके अतिरिक्त मैंने नूर मुहम्मद रोशन के साथ 'हीमाल नागराय' लिखा जो 'साउंड और लाइट' के द्वारा हारी पर्वत की अधित्यका में प्रस्तुत किया गया।

'बोंबुर यम्बरज़ल' का अनुवाद रूसी में भी हुआ। वहाँ शरीफ रशीदोफ ने इस 'ओपेरा' के भाव के आधार पर एक और 'ओपेरा' लिखा और इसे अपने खाते में डाला। इस 'ओपेरा' को बाद में डॉ० कमर रईस ने हिन्दी का रूप दिया।

प्रश्न—नादिम साहिब ! कश्मीरी में लिखा गया पहला अफसाना कौन-सा है ? इस विषय में कुछ लोग कहते हैं कि आपका लिखा हुआ अफसाना—'जवाबी कार्ड' कश्मीरी का पहला अफसाना है और कुछ लोगों का कहना है कि सोमनाथ ज़ित्शी का 'येलि कोल गाश' कश्मीरी का पहला अफसाना है। इस बारे में हम आपकी सम्मति जानना चाहते हैं।

उत्तर—साक़ी साहिब ! यह मामला बिल्कुल सीधा-सादा है। 'जवाबी कार्ड' मैंने १९४८ ई० में लिखा और उसी साल आकाशवाणी से प्रसारित हुआ। 'येलि कोल गाश' ज़ित्शी साहिब ने फरवरी १९४९ ई० में लिखा। ये दोनों अफसाने बाद में 'कोंग पोश' के एक ही अंक में छपे जिसके कारण यह भ्रान्त धारणा पैदा हो गई है।

प्रश्न—प्रगतिवादी युग से (तरक्कीपसन्दी के दौर से) गुजर कर आपकी शायरी का नया मोड़ कहाँ से आरम्भ होता है ?

उत्तर—मेरी शायरी का नया मोड़ १९५८ ई० से आरम्भ होता है। जब मैंने 'नाबद त ट्यठ व्यन' नज़्म लिखी। इस नज़्म को मेरी शायरी और कश्मीरी शायरी में एक संगमील का दर्जा प्राप्त है। शायरी में एक तबदीली आने के बावजूद भी तरक्कीपसन्दी की किरणें आज भी उन लोगों की शायरी से फूटती हैं जो तरक्कीपसंदी से सम्बद्ध रहे हैं। इन लोगों के साथ मेरा नाम भी आता है।

प्रश्न—नादिम साहिब ! आप किन विशेष संस्थाओं तथा सभाओं के साथ सम्बन्धित रहे हैं ?

उत्तर—१९४९ ई० से 'अंजुमन तरक्कीपसंद मुसनिफीन' का जनरल सेकरेटरी रहा। 'अमन कमेटी' का भी जनरल सेकरेटरी (महासचिव) रहा। १९४९ ई० में मेरी मुलाकात प्रसिद्ध क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट धन्वंतरी से श्रीनगर में हुई। मैं १९५१ ई० में कम्युनिस्ट पार्टी का सदस्य बना। 'आल जम्मू व कश्मीर टीचर्स फेडरेशन' के जनरल सेकरेटरी के रूप में भी मैंने कईसाल तक काम किया। १९५७ ई० में रियासत के अध्यापकों ने मुझे विधान सभा का सदस्य निर्वाचित किया। १९६३ ई० तक मैं नियमानुसार विधान सभा का सदस्य रहा। कल्चरल अकादेमी की जनरल कौंसिल के इलावा मैं इसकी केन्द्रीय समिति (मरकज़ी कमेटी) का भी सदस्य रहा हूँ। इसके अतिरिक्त मैं साहित्य अकादेमी की परामर्शदात्री समिति से भी सम्बन्धित रहा हूँ। वह समिति जो कश्मीरी-लिपि के सुधार के लिए दूसरी बार बनाई गई थी, उसका भी मैं सदस्य रहा। इसके अतिरिक्त मैं 'कोंग पोश', 'उस्ताद' और 'गाश' का सम्पादक भी रहा।

१९५३ ई० में मुझे एक सांस्कृतिक शिष्ट मण्डल के साथ चीन के सद्भावपूर्ण दौरे पर भेजा गया (याद रहे कि नादिम साहिब ने अपनी चीन-यात्रा का ब्योरा लिपिबद्ध भी किया है जो क्रमशः श्रीनगर से प्रकाशित उर्दू-मासिक

'आज़ाद' में छपा)। १९७१ ई० में मुझे सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार प्रदान किया गया। इसके बाद मैंने एक मास तक रूस की यात्रा की किन्तु इसका विवरण नहीं लिखा।

बातों-बातों में नादिम साहिब ने मुझे बताया कि उन्होंने शायरी में किसी से परामर्श नहीं लिया है। मेरे इस प्रश्न के उत्तर में कि जो कुछ आपने कश्मीरी भाषा तथा साहित्य के लिए किया, उसको मान्यता किस हद तक दी गई। उन्होंने कहा कि कोई मान्यता नहीं दी गई।

२९ मई १९७४ को जम्मू व कश्मीर कल्चरल अकादेमी की ओर से नादिम साहिब को सम्मानित किया गया। इस अवसर पर अकादेमी के सचिव ने उनकी सेवाओं का उल्लेख करके इन शब्दों में सराहा—

"नादिम साहिब कश्मीरी भाषा व साहित्य के पोषक तथा दीपक हैं। उनकी शायरी अपनी शैली तथा माधुर्य-गुण के कारण एक संगमील की हैसियत रखती है। आपने रियासत में सांस्कृतिक आन्दोलन की भी अपूर्व सेवा की है और अपने आत्मविश्वास तथा प्रौढ़ता के कारण कश्मीरी बुद्धिजीवियों की वर्तमान पीढ़ी को बहुत हद तक प्रभावित किया है। आपने विश्व-साहित्य की विभिन्न विधाओं को कश्मीरी शायरी में अपनाकर नये परीक्षणों से इसे समलंकृत करके नया रूप दे दिया। नादिम साहिब कश्मीरी भाषा के उच्च एवं मार्मिक कवि माने जाते हैं और उनके साहसपूर्ण परीक्षणों ने इस भाषा की साहित्यिक परम्परा को नई दिशा प्रदान की है।"

नादिम साहिब युगपुरुष हैं। वह कवि भी हैं और गद्यकार भी। समीक्षक के रूप में भी उनका योगदान भुलाया नहीं जा सकता। और सबसे बढ़कर आप एक इन्सान हैं जिसकी नस्लों से प्रेम तथा स्नेह की अमृतधारा टपकती है। ऐसे युगपुरुष सदियों के बाद पैदा होते हैं। निस्सन्देह भर्तृहरि की यह सूक्ति इन पर पूर्णरूप से चरितार्थ होती है—

'जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति तेषां यशः काये जरामरणजं भयम्॥'

मूल कश्मीरी
मोतीलाल साकी

हिन्दी-रूपान्तर
डॉ० बद्रीनाथ कल्ला
द्वारा कल्चरल अकादमी,
जम्मू-कश्मीर राज्य,
श्रीनगर

एक दिन

जाड़े का एक दिन था मैं घर पर बैठा कुछ सोच रहा था, तो उसी समय निचली मंज़िल की बैठक की खिड़की से अपने मित्र प्रेमनाथ पाल को आते देखा। वह अपने आपसे कुछ गुनगुना रहा था। उसकी आँखें कुछ कहना चाहती थीं। वह अपनी ठुड्डी हाथ से पकड़कर बोलने लगा, "हे दीना कौल ! जरा आलस्य छोड़कर वह अधूरी नजम मुझे सुनाइए तो जो तुमने लिखी है।" मैंने उत्तर दिया, "केवल वही नजम या और भी कुछ ?" वह हैरान-सा रहकर बोला, "क्या तुमने कुछ और भी लिखा है ?" मैं मुस्कराने लगा और बोला, "चलिये, वहीं सुनाता हूँ।" जब वह पूछने लगा, कहाँ तो मैं बोला, "मुजाहिद मंजिल में।" वह फूले न समा कर कहने लगा, "चलिये।" मुझे अधिक क्या पहनना था। कोहनियों पर घिसा-फटा कोट और लट्ठे का खुला पाजामा। वह कोट जिसके बटन टूट चुके थे। सुतली से मैंने उसमें गाँठ लगाई, और जहाँ बटन थे ही नहीं उन्हें वैसे ही रहने दिया और ऊपर से नीचे उतर कर उस (मित्र) के साथ हो लिया। आप लोगों को पता ही है कि मैं तब शशियार (श्रीनगर का एक मुहल्ला) में रहता था। एक क्षण में हम मुजाहिद मंजिल पहुँच गये। वहाँ लोगों की बड़ी भीड़ बाज़ार के दायें और बायें जमा थी, हमें रास्ता ही नहीं मिल रहा था वहाँ तक जाने का जहाँ उन्होंने मंच बनाया था। यह मंच पत्थर-मसजिद के सामने बायीं ओर की सहन में बना हुआ था। वहाँ लोग कुण्डलों की तरह लटक गये थे। कन्धे से कन्धा छिलता था। लोग छतों पर चढ़े हुए थे, और कुछ कँगूरों पर चढ़े हुए थे। कुछ-कुछ नदी के समीप लारियों पर बैठे हुए थे, और कुछ दीवारों पर जबर्दस्ती चढ़कर इन से बगलगीर हो रहे थे और कहीं पर तिल के बीज के समान भी रास्ता नहीं था। प्रेमनाथ ने कम्बल ओढ़ रखा था और फिरण लगाकर पाँवों में खड़ाऊँ डाले थे जिन्हें वह कदापि छोड़ता नहीं था। मिन्नतें करके हमें बैठने के लिए कुछ रास्ता मिला, साहस करके मैंने पंडाल की ओर जाने का रुख किया। शायद मेरा चेहरा कुछ-कुछ उतरा-सा दिखाई दे रहा था क्योंकि बीमारी ने मुझे कुछ दिन पहले ही छोड़ दिया था। सिर पर मेरी पगड़ी कुछ अस्तव्यस्त थी।

किसी न किसी तरह मंच के समीप पहुँचा। वहाँ जाकर मुझ पर अपने चचेरे भाई पृथ्वीनाथ नेशनली की नजर पड़ी। वहाँ पर अपनी जेबों को सकुचाते हुए टटोलने लगा क्योंकि मुझे खटका था कि वह कागज का पुरजा कहीं खो न

गया हो। वह मेरा चचेरा भाई बचपन से ही नेशनल कान्फेरेंस का नेता-सा बन गया था, उसने सोचा था कि क्या पता यह (मैं) क्या बोलने आया हूं।

धीरे-धीरे मैंने उससे कहा कि एक कविता बना डाली है। इसे पढ़ने के लिए उसने मेरी ओर ऐसे अन्दाज से देखा जैसे उसे कुछ भी दिल में बैठ नहीं रहा था। इधर-उधर ध्यान से देखकर थोड़ा आगे बढ़ा और मैं उसके पीछे-पीछे हो लिया। सोचा क्या यह मुझे कविता सुनाने के लिए अवसर देगा, क्योंकि मैं इस टोली में कोई भी महत्त्व नहीं रखता था। निदान मैंने किसी अपने को देखने के लिए इधर-उधर नज़र घुमाई। देखा शामलाल सराफ को और उनसे कनखियों से कविता सुनाने की मिन्नत करने लगा। उन्होंने मुझसे कुशल-क्षेम पूछा मगर उनकी हिम्मत नहीं हुई कि वह पण्डित को बोलने की अनुमति दे।

इसके बाद मैंने इस जलसे के आयोजक महीदीन करा को देखा। डरते-डरते मैंने उनसे अनुरोध किया कि मुझे दो मिनट दिये जायें। उन्होंने जरा मुंह चढ़ाकर कहा, "नहीं जी, समय ही नहीं है।" इतने समय में शेख साहब वहाँ पधारे। मैं हिरण-नेत्रों से बेबस होकर मंच के ऊपर की ओर टकटकी बाँधे निहार रहा था तो बख्शी साहब की नज़र मुझ पर पड़ी। उन्हें आभास हुआ कि कोई प्रौढ़ व्यक्ति कहना चाहता है, कागज की पर्ची हाथ में थामे हुए। महीदीन के साथ बात की और मेरी ओर इशारा किया। इसी समय कोई सिख सरदार एक कविता सुना रहा था और लोग आपस में कानाफूसी कर रहे थे। बख्शी साहब ने मेरी ओर देखा और अँगुली हिलाकर मुझसे इशारा किया—

"जरा इधर आयेंगे। आपको दो मिनट मिलेंगे, बोलिये जो कुछ आपको कहना है।" मैंने ये दो मिनट भी गनीमत समझते हुए बहुत माने। मैंने यों कविता-पाठ आरम्भ किया—

"तुम कश्मीर के जवान हो
तुम्हारे कन्धे पर हल का निशान है
तुम कमर बांध कर कमान उठाओ
हमारे सितारे को बुलन्द करो।
तुम कश्मीर की शान बनो
तुम काफिले का सरदार बनो
कश्मीर का रखवाला बनो,
तुम आग हो, अलाव हो
तुम जीवन के जलाल हो।
अगर तुम बसंत की बयार हो
तो तुम बादल के नीचे छिपे हुए थे
अब पहाड़ और जंगल छान कर निकलो

तुम तूफान मचाओ साकार तूफान बन कर
लाल डारों की तरह तुम चमकोगे
और आबशारों की तरह गरजोगे।
तुम ऊषा की टोह आग बनकर ले लो
तुम्हारी गरज और रफ्तार
तुम्हारे यौवन की कसम ताजा व ताजा है
तुम उथल-पुथल मचाने वाली ज़बान बनो
काफिले का सरदार बनो, कश्मीर का प्रहरी ।
रोना-चीखना शबनम का स्वभाव है
मुस्काना और विकसित होना गुलशन का
वतन उसी का है जो इस पर जवानी निसार करे
यही एक अमोघ साधन है।
तुम अपना सिर चढ़ा दो
मरकर भी अमर बन जाओ
काफिले का सरदार बनो, कश्मीर का प्रहरी।
मेरे भाई मैं तुम से क्या कहूँ
मुझे तुम से बहुत शिकवे हैं,
तुम से ढेर सी शिकायतें हैं,
मगर मुझे बहुत ताज्जुब है
शायद तुम्हें यह पसन्द न होगा
तुम्हारी पुरानी हथकड़ियाँ कट जायेंगी
गुलामी के दाँव-पेच भी
तुम्हारा झुका हुआ सिर उन्नत हुआ
शायद तुम्हें यह पसन्द न हो।
तुम्हारे कन्धों पर अभी भी वही बोझ है
तुम्हारे साथ वही बे घरी सही हुई है
तुम्हारी आँखें बरबस छलकने को हैं
लेकिन तुम्हें यह कुछ लुभा न गया।
मेरे पास क्या नमक है, चाय है
मेरी किसी को ममता है
क्या उसे भी मेरा दर्द मालूम है
जिसने मेरा वतन आजाद किया।
क्या उसकी ममता भी खोखली है
जिसने यह चमन आजाद किया।

वह जेलों में तुम्हारे लिए बंद रहा
ताकि तुम्हें अधिकार मिल सकें
उसने गूँगे और बेज़बान को मुखर बना दिया
इरादों को यथार्थ में बदल दिया
तुम फिर भी अफसोस कर रहे हो।
मेरे पास नमक है, चाय है
क्या मेरी ममता किसी को है ?

तुम यह सुनकर हैरान होगे मुझे दो-ढाई मिनट नज़म पढ़ने में लगे मगर इन नज़मों द्वारा ही जमाने का रंग-रूप बदल गया।

क्षण-क्षण के बाद लगातार तालियाँ बजने लगीं, मगर मुझे मालूम नहीं कि सुनने वालों ने इन पद्यों का भाव समझ लिया था। इतने में कुछ ऐसा हुआ कि पंडाल पर बैठे हुए सब व्यक्ति मेरे जरा-से तमतमाए मुँह की ओर देख रहे थे। जैसा साधारणत: शाम को बुखार की जूड़ी चढ़ जाती है। मेरा चचेरा भाई थोड़ा सा भौचक्का-सा रह गया और शामलाल सराफ कुछ विस्मित हुए। जो महीदीन इस जलसे का आयोजक था उसके मुँह से बार-बार वाह-वाह निकली, शेख साहब कुछ अधिक ही उल्लास में आ गये और उन्हें वे दिन याद आये जब सन् १९३८ में मेरी कविता 'मज़दूर का ख्वाब' सुनकर वे बहुत अधिक प्रसन्न हुए थे।

नादिम द्वारा प्रणीत
एक कश्मीरी कहानी

हिन्दी रूपान्तर
सम्पादक

जवाबी कार्ड

(कोंग पोश से)

"जूनदेद्य-जूनदेद्य—क्या देद्य अभी तू अन्दर ही है?" अपने आने की खबर देकर जमालमीर अचेतन-सा शाद्वल (सब्ज़ घास) पर बैठ गया। नसवार का डिब्बा अपने जीर्ण-शीर्ण 'फ्यरन' (परिधान) के अन्दरूनी जेब से निकाल दिया और बड़ी मात्रा में नसवार से दोनों तरफ दाँतों को लेप दिया। उसके हाथ में एक छोटी-सी छड़ी थी उससे वह धूलि पर चित्रकारी करने लगा। पन्द्रह मिनट बीत गये तो गोशाला के बाईं ओर दरवाजे की आवाज आयी। जमालमीर चौंक उठा और पीछे की ओर मुड़ा। जूनद्यद को देखा—मानो वह पूनम का चाँद थी। उसको देखकर वह चकित हुआ तथा अनायास हँस पड़ा।

"हाँ, तुझे धिक्कार! मैं समझी कि तड़के कोई आ गया है। रे शैतान कहीं के! तूने तो आवाज बदल डाली।" स्मित से जूनद्यद बोली—जूनद्यद गाँव की नानी और सब की माँ। जूनद्यद लम्बी स्त्री, बर्फ जैसे श्वेत बालों वाली, मद्यपात्रों के समान उभरे नेत्रों वाली, सुन्दर नाक वाली, लम्बी-लम्बी बाजू वाली। बर्फ के समान कोरे कपड़े का 'पोछ' (लम्बा कुर्त्ता, पहनकर वह तन की रानी जैसी लगती थी।

"क्या द्यदी! धूप इतनी प्रखर हुई और तुम्हारी नींद अभी नहीं खुलती।" जमालमीर ने मुँह में से नसवार का घूंट फेंककर कहा, "अभी तुम मूर्ख हो, मैं क्या कहूँ?"

ज़ून ने प्रत्युत्तर दिया—"मुझे समझ में नहीं आता है कि तुम कब सीखोगे? क्या तुमने नहीं देखा? मैं अभी गोशाला में से निकली तो नींद में कहाँ थी?"

जमालमीर खिसियाया-सा हुआ किन्तु साहस करके बोला, "नहीं देद्य! असली तो गुलसाहिब के कारण···।" ज़ूनद्यद ने त्यौरियाँ चढ़ा दीं। जमालमीर ने बात काट ली। थोड़ी देर के लिए दोनों नीचे की ओर देखने लगे। अन्त में ज़ूनद्यद ने कहा—"यह भी ठीक है। मेरे लिए जरूरी था। जाओ, तुम देखो। बदरी का क्या हाल है? न वह घास खाती है न फल। प्रातःकाल से मैं इसी की सेवा में लगी थी।"

इतने ही समय में और भी आदमी आ गये तो प्रसंग चला। ज़ूनद्यद कौन

थी, कहाँ की थी, कितनी बड़ी थी, ये बातें किसी को गाँव में मालूम न थीं, जो वहाँ बड़े से बड़ा था, उसने भी ज़ूनद्यद को वैसे ही देखा था, किन्तु ज़ून प्रत्येक चीज़ थी। गाँव की हाकिम, गाँव की जज, गाँव की थानेदार, नम्बरदार, चौकीदार, पटवारी। कहो वह सर्वेसर्वा थी। बड़ों की परामर्शदात्री तथा छोटों की साथी। सासों को सीख देने वाली और बहुओं की विश्वासपात्र। यदि पंचायत लगती, ज़ून को ही फैसला देना पड़ता। यदि किसी को किसी बेगार पर जाना हो, ज़ून की ही आज्ञा से। यदि किसी का ब्याह हो, ज़ून ही मध्यस्थ रहती। यदि किसी को दर्द होता, ज़ून को ही दवादारू करना था। इस इलाके में यह मशहूर था कि ज़ून का वचन पत्थर की लकीर के समान अटूट था जिसे स्वयं वाइसराय भी बदल नहीं सकता। इसी से ज़ून का आवास सारे गाँव का ननिहाल-सा था। जिस किसी को किसी प्रकार से दुःख पहुँचता, वह ज़ून के ही पास दौड़ता।

(२)

निचले गाँव को लोग 'कावमाल्युन' कहते हैं। इसकी वजह यह है कि इस तरफ के कौवे आते-जाते समय चिनारों पर रात गुजारते हैं और बहुत से कौवों ने इन चिनारों पर घोंसले भी बनाये हैं। आज भी सूर्यास्त के समय कौवों ने वहाँ बहुत ही शोर मचाया था, इतना कि नालों का कलकल भी कोई नहीं सुनता था। सहसा बन्दूक की आवाज हुई। सारे कौवे एकदम टाँय-टाँय करते हुए चिनार के वृक्षों से उड़कर भाग गये। आखिर यह किसने बन्दूक से पटाका मार दिया। वह एक फौजी जवान जा रहा है। हो न हो, यह उसकी शैतानी है। गर्दनें हिला-हिलाकर आसपास के मेवेदार वृक्षों पर बैठकर कौवे सोचते हैं—फौजी जवान, हृष्ट-पुष्ट तथा उभरी हुई छातीवाला, शोभायमान डीलडौल, जैसे कोई फिरंगी कप्तान। निश्चिन्त होकर इधर-उधर झूमता हुआ चल रहा है। ज्यों ही वह ऊपर के गाँव में पहुँचा, सारे बच्चे उसके इर्द-गिर्द इकट्ठे हुए। उसकी टाँगों से लिपट गये तो कइयों ने उसकी जेबों में हाथ डाल दिये। कुछ उसकी बन्दूक को नाखूनों से खुरचने लगे और सबों ने ज़ोर से कहा—गुलसोब, हमारा कप्तान गुलसोब (गुलसाहिब)।

यही गाते-गाते बच्चों का यह जलूस ज़ूनद्यद के आवास पर पहुँचा। ज़ोर से दरवाजा खोलकर ज़ूनद्यद बाहर आई। हँसमुख, चेहरे पर बनावटी संजीदगी, ऊंह, गुलसोब ! कप्तान बुद्धू ! यदि ऐसे बुद्धू कप्तान बनते तो···। मगर इस क्षण में दोनों माँ-बेटे एक-दूसरे की गर्दन पर बाजुएँ डाले हुए थे।

गुलसाहिब ज़ून को क्या लगता था। यह भी किसी को मालूम न था। बात ऐसी थी कि कुछ उसे इसकी भतीजी के लड़की का बेटा समझते थे तथा कुछ

उसके दामाद का पोता। किन्तु इस विषय में अधिकतर लोगों की यह राय थी कि जून इसे मकदूम साहिब की सीढ़ी पर से उठा लायी थी। अस्तु, इनका आपस में क्या सम्बन्ध था, हमें उससे क्या प्रयोजन? मगर इतना सब समझते थे कि यदि जून की किसी में जान है, वह गुलसाहिब में। जब से गुलसोब म्लेशा फौज में भर्ती हुआ था तब से वह हमेशा उसका नाम लेती थी। उसकी हर साँस में गुलसाहिब। वासा! क्या तुमने सुना? आज गुला ने ऊटी से पत्र लिखा। लिखता है—उसने एक ही दिन सत्रह कबाइलियों को मौत के घाट उतार दिया। स्वनमाली! क्या कहूँ? गुलसाहिब पर बलि हो जाऊँ। उसने जवाबी कार्ड लिखा, मानो कागद पर मोतियों के दाने जड़े हों।

जमालमीरा! हमारी दस पीढ़ियाँ रोशन हुईं। बेटा निकला गुलसाहिब। वह इस समय भी हमारे कश्मीर की रक्षा करता है।

(३)

जिस दिन गुलसाहिब वापिस युद्धक्षेत्र पर चला गया उस दिन सारे गाँव में भीड़ लगी। प्रातःकाल तक सबों ने चूल्हा जलाया था। सूर्योदय तक सब स्त्री-पुरुष, बड़े तथा छोटे जून के आवास पर इकट्ठे हुए। कुछ तो प्रसाद लेकर आए थे, कुछ तावीज लेकर। कुछ किसानों की औरतें ओढ़नी (कश्मीरी में पूच) के आँचल में अचार लेकर, कुछ चटनी के गोले लेकर आई थीं। बहुत-सी औरतें सूखे पत्तों और साग की गुच्छियाँ लाई थीं! ज्यों ही जून ने दरवाजा खोला, त्यों ही धक्कम-धक्का शुरू हुई, इस चाह से कि मैं ही पहले अपनी भेंट दूँ।

"अरे जूनद्यद, जूनद्यद! लो ये सूखे पत्तों की गुच्छियाँ। यह 'फार्मी' शलगमों की।" लज्जित होकर ग्वालिन रहत बोलने लगी, "यह मैंने गुलसाहिब के वास्ते सुरक्षित रखी थीं। यह सूखे साग की गुच्छियाँ अपने पास रख लो।" "तनिक यह साग की गुच्छी भी ले लो। यह तो खशपोर की वाटिका का वसन्तकालीन कडम साग है।" रमज व्यगार ने कहा, "गुलसाहिब से कहो कि ऐसा साग शहर में बनना सम्भव नहीं है।" "यह थोड़ा-सा अचार भी ले ले, द्यदी! उसे यह कहो—यह निचले गाँव के कश्मीरी कडम का अचार है।" "जूनद्यद! गुलसाहिब को बुलाओ। आखिर वह कहाँ है? क्या वह अभी आराम में ही है?" वासुभट्ट ने आहिस्ता से कहा।

"कहा न, तुम मूर्ख हो। क्या वह अभी सोया ही होता। वह मुँह धोने के लिए नाले पर गया है। वह आ ही रहा होगा। तुम्हें क्या देर हुई?" हँसते-हँसते जूनद्यद ने कहा।

"चिंता हो रही है। मैं कंठ काक से छोटा यंत्र लाया हूँ। चाहता हूँ कि मैं उसे स्वयं पहना दूँ।" वासुभट्ट ने त्यौरियाँ चढ़ाकर कहा।

इतने ही में गुलसाहिब नाले से मुँह धोकर आया। ज्यों ही वह नजदीक पहुँचा

त्यों ही कइयों ने उसे गले लगाया, कइयों ने उसके माथे को चूमा, कइयों ने उसे घेर लिया। तत्पश्चात् जब वह वर्दी पहनकर तथा बन्दूक कंधे पर लेकर निकला, सबों की बाछें खिल गईं। औरतों ने जी खोलकर उसे आशीर्वाद दिया—जाओ, गुलो! फलो-फूलो। तुम्हारे सब कष्ट दूर हों और तुम्हारा भाग्योदय हो।

सारा गाँव उसके पीछे चार मील तक निकला। जब वह आँखों से ओझल हुआ तो सारे लौट आये।

(४)

आज पौ फटने से ही सारे आसमान पर कुहरा छाया हुआ था। सूर्योदय तक शिखर मालाएँ बादलों ने घेर ली थीं और बादल पहाड़ों की तलहटी तक फैल गये थे। पूर्व की ओर से विकराल बिजलियाँ चमकती थीं। लगता था जैसे कहीं पर वारिश की धारायें समेट रही हों। प्रायः ऐसे दिन गाँव के लोग अन्दर ही बैठते हैं। किन्तु आज सारे लोग नाले के किनारे टोलियों में बैठकर छोटे सेतु के नीचे कानाफूसी कर रहे थे। सब व्याकुल थे। पुरुषों की मण्डली से ज़रा दूर रहकर औरतें व्याकुल बैठी थीं। पुरुष भी दुखी थे। नंगे सिर तथा चादर ओढ़े बिना वासुभट्ट हाँफता हुआ उनके पास पहुँचा और ज़ोर से रोने लगा। "करीम-जुव! यह क्या सुना? अफसोस! आज प्रलय हुआ···" कहते-कहते उसकी बोलती रुक गई। "चुप चुप", मुँह पर हाथ रखकर करीमक्राल ने उसे कहा—"इससे काम नहीं बनेगा। धीरज धरो। आखिर ज़ूनद्यद का उपाय सोचो। उसको किस तरह हम संदेश भेज देंगे।"

"आखिर यह क्या हुआ? यह किसने कहा? यह किसने चाहा?" हिचकियाँ भरकर वासुभट्ट ने उससे पूछा।

"किसने चाहा? हमारे खोटे भाग्य ने। कल जबार डाकिया आ गया। उसने मुझे गुलसाहिब का (श्वास भरकर) कार्ड दिया। वह खाली था। जसे उसको ज़ूनद्यद ने भेज दिया था वैसे। लगता है कि उसे युद्धभूमि पर···" इससे आगे करीमक्राल कुछ न बोल सका।

(५)

इस तरह एक-एक करके ये सब निराश होकर ज़ून के आवास पर पहुंचे। ज़ून आज भी गोशाला में गायों को घास देने के लिए गई थी।

'यह आपकी भूल है। आखिर वह यहीं पर चिमट कर नहीं बैठता। जब से वह युद्धभूमि पर चला गया तब से 'सकूत' (क्षधाभाव) नहीं हुआ। इससे काम नहीं चलेगा!' ज़ूनद्यद गोशाला में गाय के साथ बातें करती थी और उसने आवास पर बाहर मण्डली की बातें सुनीं। अन्दर से ही उसने आवाज़ दी, "कौन—वासा

है ? आज क्यों आप प्रातः ही उठ गये हैं ?" गोशाला में से निकलते-निकलते उसने अपने आपसे कहा—'गुला ने बदरी (गाय) को सर पर चढ़ा दिया। अहो, अहो। आपके साथ कोई दुर्घटना हुई है ?' लोगों की भीड़ देखकर जून चकित हो गई, "कहो क्या कुछ झगड़ा हो गया ?" कहते क्यों नहीं हो ?"

सब अवाक् रह गये। किसी ने साँस तक नहीं छोड़ा।

"कहो, आपकी जीभ निकल गई क्या ? कुछ कहो।" कहते-कहते जून का रंग बदलने लगा, "क्या हो गया ! क्या हुआ ?"

आखिर वासुभट्ट अपना मुँह नीचा करके साहस से कहने लगा—"जूनद्यदी ! बलि हो जाऊँ।" वह ज्यों ही बोला, जोर से रोने लगा। सब सिसकियाँ भरने लगे। उनकी आँखों से आँसू की झड़ी बहने लगी।

जूनद्यद कुछ बिगड़ गई। उसका रंग फीका पड़ गया किन्तु साथ ही बोलने लगी। कुछ अपने आपसे, कुछ सबों की ओर, "क्यों, गुला ठीक है ? गुला सुरक्षित है ?" उसको पता नहीं कि कितनों की बलि देकर, कितनों के बदले। वासुभट्ट ने धीरज के साथ उसे कार्ड दे दिया। जवाबी कार्ड। "यह···कल पहुँचा मगर···यह खाली···पता नहीं···।"

जूनद्यद निश्चेष्ट खड़ी की खड़ी रह गई। कार्ड हाथोंहाथ हथियाने से सिमट गया था। धीरे-धीरे उसने वह खोला और उसके दोनों तरफ देखने लगी। चारों तरफ सन्नाटा छा गया। चिड़ियों की चहचहाहट तक रुक गई। केवल नाले की कलकल ध्वनि ऐसी लगती थी मानो ईद के दिन कब्रिस्तान पर मृतकों को गालियाँ देता हो।

जून के चेहरे का रंग फीका पड़ गया। इन्हीं दो क्षणों में उसके चेहरे की झुरियाँ प्रकट हुईं और उसकी आँखों में अश्रुकण छलकने लगे। आकृति देखकर वह वापिस चली गई।

और जूनद्यद ने अट्टहास किया। सब निश्चेष्ट हो गये। वह बोली—"वासा ! मैंने कहा था ना, तू बुद्धू है। यदि तुझे बुद्धि होती, तो क्या अब तक तहसीलदार न बनता ?" जून व्यंग्य से सबों को कहने लगी, "क्या तुझे दिखाई नहीं देता है ? देखो कार्ड खोलकर, इसकी सिलवटें साफ दिखाई देती हैं। दूर से ऐसा लगता है मानो पेंसिल से कार्ड पर लिख दिया हो। गुला ने मुझे औरतों की फौज में भर्ती होने के लिए लिखा है।" जून ने प्रत्यक्ष रूप से कहा।

जिस दिन जूनद्यद लकड़ी का बन्दूक लेकर कोरा 'पोछ' पहनकर तथा कमर बाँधकर निकली, उस दिन सारे गाँव में विषाद हो गया था। उस दिन कोई बच्चा 'काकपोर' में नहीं था। न कोई कौआ वृक्षों पर टाँय-टाँय करता था।

हिन्दी रूपान्तर
डा० बद्रीनाथ कल्ला

मूल कश्मीरी
नादिम

नादिम प्रशंसकों की नजरों में

'मेरे गुरु मेरे पथ-प्रदर्शक'

यह मेरे धनभाग्य और सौभाग्य हैं कि मेरे विद्यार्थी जीवन में मुझे श्री नादिम जैसे पथप्रदर्शक तथा शिक्षक से शिक्षा पाना नसीब हुआ। कहते हैं न, देखने वाले कयामत की नजर रखते हैं। मुझे इस लोकोक्ति का प्रत्यक्ष तथा प्रकट रूप नादिम साहिब के व्यक्तित्व में ही मिल गया। वह कैसे—मैं उस समय पांचवीं या छठी श्रेणी में पढ़ता था। मेरे स्वर्गीय पिताजी ने मुझे हिन्दू हाई स्कूल बडीयार, श्रीनगर में दाखिल किया। प्रार्थना सभा के समय इस विद्यालय के शिक्षकगण इस सभा में उपस्थित थे। हम सब विद्यार्थी नीचे बैठे थे कि एक लम्बे अच्छे कद के शिक्षक नसवारी रंग की पगड़ी बांधकर हमारे सामने आये और भाषण देने लगे। इनके बोल सीधे ही मेरे मस्तिष्क तथा मन में उतरने लगे। मुझे मन-ही-मन इनके प्रति बड़ी भावना उत्पन्न हुई—बाहर इनके साथ बातें करूँ। इनके भाषण के पश्चात कोई और शिक्षक सामने आए। परन्तु मेरा ध्यान इनके भाषण की ओर तनिक न लगा। इसके विपरीत मैं जमीन पर हाथ से केवल 'नादिम' शब्द के नए-नए डिजाइन बनाने में व्यस्त रहा। एक शिक्षक ने मेरी इस रेखाओं की हेराफेरी को खूब देखा और मुझे ऐसा न करने का संकेत दिया। यह मेरा इस विद्यालय में पहला ही दिन था। शायद इसलिए डांटा नहीं। मेरी लिखाई पहली-दूसरी कक्षा से ही बहुत सुन्दर थी। इससे जहाँ-तहाँ मेरी प्रशंसा हुआ करती थी। अब मैं बहुत ही सुन्दर लिखता था। चित्रों से भरी मेरी कापी जिस पर काली स्याही से लिखा था, एक-एक करके सारे शिक्षकों ने देखी और बड़े प्रसन्न हुए। पहुँचते-पहुँचते यह कापी श्री नादिम के हाथों में पहुँच गई। वे हमारे प्रिन्सिपल थे। उन्होंने मुझे अपने कमरे में बुलाया और मेरी तारीफ की और शाबाशी दी। कई दिन बीते, नादिम साहिब ने मुझे अपने कार्यालय में बुलवाया और पोस्टर लिखने का आदेश दिया, साथ ही विधि भी बताई। इससे मैं और भी इनकी योग्यता पर लट्टू हो गया। पोस्टर पर लिखना था 'शैवाचार्य श्री अभिनव गुप्त दिवस'। मैंने उनके कथनानुसार लिखा। उसको खूब सराहा गया। इससे मैं नादिम साहिब के और निकट आ गया। हमारे विद्यालय में प्रति-वर्ष 'गीता जयन्ती' का समारोह बड़ी धूमधाम से मनाया जाता था। इसमें भी

गीताजी के बहुमूल्य श्लोकों को अनुवाद सहित लिखा जाता था और इनकी प्रदर्शनी की जाती थी। विद्यार्थियों को गीताजी तथा और वस्तुएँ पारितोषिक के रूप में दी जाकर उनमें उत्साह भर दिया जाता था। विद्यालय में साहित्यिक गोष्ठियाँ तथा उच्चस्तर की कवि-गोष्ठियाँ होती थीं। इन सब कार्यक्रमों के संयोजन का श्रेय श्री नादिम को है। कश्मीर के तमाम विद्यालयों में हिन्दू हाई स्कूल का नाम बड़ा प्रसिद्ध हो गया। उसी समय श्री नादिम ने कहा था कि 'सायिल' भी आगे चलकर कश्मीरी साहित्य की सेवा करेगा। सो तो अपने प्यारे गुरु तथा कश्मीर के महाकवि श्री नादिम के इस कथन को साकार रूप देने का ही प्रयत्न करना आजकल मेरा काम है। श्री नादिम का अनुभव था उनकी कार्यात्मक योग्यता के फलस्वरूप मेरे और साथी तथा सहपाठी श्री माखनलाल 'बेकस', स्वर्गीय डॉ० शंकर रैणा, प्यारेलाल ओगरा (विदेश में प्रसिद्ध डाक्टर), श्री जवाहरलाल कौल (दिनमान के पत्रकार), श्री मोतीलाल 'साकी', श्री चमनलाल 'चमन' आजकल जाने-माने साहित्यकार हैं। और हम सब को श्री नादिम के साथ रह-रह कर उनके साहित्यिक वातावरण में रहने से बहुत कुछ मिला है। जिसके हम आभारी हैं। श्री नादिम बराबर महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शांतिनिकेतन का-सा नमूना अपने 'लल द्यद मिमोरियल' हाई स्कूल और ओरेन्टल कालेज को बनाने का प्रत्येक प्रयत्न कर रहे थे। परन्तु अब आपका शरीर दुर्बल हो गया है।

श्री नादिम के पिताजी का नाम स्वर्गीय पण्डित हरी कौल था। माता का नाम स्वर्गीय 'सुन्दर द्यद' था। आपका निवास-स्थान शशियार चिन्क्राल मुहल्ला था। और आपका जन्म १५ मार्च १९१५ में अपने ही घर में हुआ। आपका ननिहाल पुलवामा ज़िला के एक गाँव मुरन के मुन्शी घराने में था। आपकी केवल एक बहन थी जो ब्याही जाने के कई वर्ष बाद स्वर्ग सिधारी। उसका विवाह मुहल्ला गाखन श्रीनगर के श्री जगन्नाथ बज़ाज़ के साथ हुआ था। वे चिकित्सा विभाग में नौकर थे। उस बहन का एक बेटा था, वह भी इस संसार में रह न पाया। श्री नादिम जब पाँच या छः वर्ष के ही थे कि उनके पिताजी भी स्वर्ग सिधारे तो माता सुन्दर देदी ने ही नादिम साहिब का पालन-पोषण किया। वह बड़ी बुद्धिमती थीं। उनके विषय में कहा जाता है कि वह बड़ी 'हाजिरजवाब' और 'खुदादाद ज़िहनियत' से भरपूर थी। सुंबल ग्राम के स्वर्गीय कंठ कौल की सुपुत्री के साथ नादिम साहिब का विवाह हुआ। श्री कंठ कौल फारिस्ट डिपार्टमेंट में क्लर्क थे। स्वर्गीय श्री ग्वाश लाल कौल (इतिहासकार) श्री कंठ कौल के भाई थे। नादिम साहिब का जन्म १९४४ में हुआ।

शिक्षा-दीक्षा

श्री नादिम ने बड़ी निर्धनता में अपना जीवन बिताया। वह अपनी माता के कठोर परिश्रम से पाला-पोसा गया। आपकी माता चरखा कात-कात कर निर्वाह करती थी। अब नादिम साहिब पढ़ते-पढ़ते भी ट्यूशन करते थे तो अपना खर्चा कमाते थे। परन्तु इसके साथ-साथ नादिम साहिब ने अपनी पढ़ाई के समय में ही अपने ही घर फ्री स्कूल (Free School) चलाया। जिन बच्चों-बच्चियों का कोई नहीं होता था, जिनको शिक्षा इत्यादि पर व्यय करने का कोई साधन नहीं होता था अथवा निर्धन होते थे, कई अनाथ भी थे—उनको नादिम साहिब अपने घर में ही किसी भी प्रकार के शुल्क के बिना ही शिक्षा देते थे।

नादिम साहिब ने १९३० ई० में मैट्रिक, १९३२ में एफ० एस-सी० पास किया। बी० एस-सी० तब तक जम्मू में पढ़ा जाता था परन्तु अपनी विवशता के कारण आप जम्मू नहीं जा सके। अतः १९४५, १९४६ ई० में आपने एस० पी० कालिज श्रीनगर से बी० एस-सी० पास किया। स्कूल का जीवन दिलावर खां एम० पी० स्कूल में बिताया। उसके पश्चात १९५१ में आपने बी० टी० का प्रशिक्षण प्राप्त किया। उसमें भी आपको पहले जम्मू जाना पड़ा और बाद में श्रीनगर में इसे पूर्ण करना पड़ा।

१९४२ ई० में जब 'भारत छोड़ो' (Quit India) आन्दोलन का नारा लगा तो आपने भी इसमें बहुत काम किया। आपने बहुत देर 'अंडर ग्राउंड' रहकर गुप्त रूप से काफी काम किया। उसके बाद आपका ध्यान समाज-कल्याण की ओर गया। आपने समाजवाद का भली भाँति अध्ययन किया। मार्क्सइज्म (Marxism) को बड़ी लग्न से पढ़ा। टालस्टाय का भी अध्ययन किया। इशतराकी तहरीक (Socialism) के आप ही कश्मीर में जन्मदाता हैं। श्री रजनी पामदत्त जो सर्वप्रथम इंडियन कम्यूनिस्ट माने जाते हैं, उनके साथ आपकी बड़ी मित्रता थी। और आपको उनके प्रति अति रुचि थी। इसी प्रकार कश्मीर की आज़ादी की तहरीक में भी आपने खूब काम किया है।

आपने पाँच सौ रुपये ऋण लेकर हिन्दू स्कूल की नींव रखी। आपको ही इस स्कूल की उन्नति का भी श्रेय है। जहाँ आपने बड़ी लग्न से बराबर निश-दिन काम किया। आपको बाद में हिन्दू एजुकेशनल सोसाइटी स्कूल्ज का प्रिंसिपल बनाया गया। और आज तक आप उस पद पर बराबर काम कर रहे हैं। आपने इन स्कूलों को चार चाँद लगाए। आपने अपने साथियों के सहयोग से दिन पर दिन इन स्कूलों की प्रसिद्धि में बढ़ावा किया।

'नादिम' एक साहित्यकार

'नादिम' साहिब पहले उर्दू में कविता करते थे और उर्दू में ही लेख इत्यादि लिखते थे। उन दिनों आप अपना उपनाम 'सहर मशरिक़ी' लिखते थे। उर्दू पत्र-पत्रिकाओं जैसे 'नया दौर', 'नई रोशनी' तथा 'नई ज़िन्दगी' में आपकी कविताएँ और लेख उर्दू भाषा में प्रकाशित होते रहते थे। आपकी प्रसिद्धि उन्हीं दिनों में फैली हुई थी।

अंग्रेज़ी भाषा का खूब अध्ययन किया। आप स्वयं अंग्रेज़ी में कविताएँ लिखते थे। आपका एक सॉनेट (Sonnet) 'My Love' बड़ा ही प्रसिद्ध था। आपको उर्दू भाषा के एक अच्छे-खासे (दरवेश शायर) संतकवि 'आमिल दर्वेश' के साथ बड़ी जानकारी थी।

'सागर' निज़ामी की एक उर्दू पत्रिका 'एशिया' जो मेरठ से प्रकाशित होती थी। उसमें आपकी रचनाएँ भी छपती थीं। एक कविता थी 'आमिल बहार—नादिम खिज़ाँ।'

नमूना

'आमिल'—जवानाने चमन का रुतबा अवल है हसीनों में।
बराबर का न देखा रोये ज़ेबा नाज़नीनों में॥
'नादिम'—सुर्ख पत्ते मुनअक्स हैं ओस के छोटे नगीनों में।
जवानों की चिताएँ जल रही हैं आबगीनों में॥
'नादिम'—सर फ़रोशी का यह आलम बाग़ में,
एक झोंका लाल पत्ते गुल हज़ार,
कर रहे हैं अपना-अपना सर निसार,
बज़्मे याराँ से क्यों है मातम का मदार।
है सफ़ेदा दूर ही सिमटा हुआ,
ज़र्द है तनहाई में बेक़रार।
बज़्मे याराँ से है मातम का मदार।
'काँगड़ी'—अंगारे काँगड़ी में है दिल के दाग़ रोशन,
कुर्ते की खिड़कियों से हैं ग़म के चिराग़ रोशन।

१९३३ ई० से उर्दू में लिखा। 'तसवीर के दो रुख़' वाली कविता में 'आमिल दर्वेश' और 'नादिम' की दो कविताएँ थीं।

'सुबहए वतन' में आपने यूँ लिखा था।

शामे ग़म में सुबहए उमीद क्या।
रोज़ रोज़ह जिनको उनको ईद क्या॥

उनको जो मर्ज़ी हुई तो जिन्दा हुए।
मेरे होने की भला तमहीद क्या॥
नादिम के बारे में एक जगह यूँ लिखते हैं
इक इशारे पै अमल का रक़्स क्या,
मैं करूँ ताईद और तरदीद क्या।
तूने 'आमिल' रँग दिया है 'सहर' को,
इससे बेहतर हो तेरी तक़लीद क्या॥

हिन्दुस्तानी में आपने 'कालिंगा से राजघाट तक', 'अशोक से गांधी तक' लिखी हैं जो बड़ी प्रसिद्ध हैं। श्री सैफ-उद्दीन किचलू और श्रीमती उमा नेहरू जो प्रसिद्ध कांग्रेस नेता थीं और श्री जवाहरलाल नेहरू के भाई की धर्मपत्नी थीं, उनके साथ भी आपका सम्पर्क रहा था। आपकी एक कविता का शीर्षक था—

ए मेरी मौत अब मुझे दुनिया से उठा ले।
खंजिल हूँ पत्तियाँ जेरे शबनम तो सितम क्या है।
अगर काँटों की क़िस्मत में न हो पानी तो ग़म क्या है।
सद्फ़ की आबिरू काइम है कि वह तशना काम आए।

उर्दू के पश्चात नादिम महोदय ने हिन्दी में लिखना आरम्भ किया। हिन्दी में भी आपने बहुत कुछ लिखा है। आपने एक बार लल्लेश्वरी के एक वाक्य का हिन्दी अनुवाद इस प्रकार किया था :

लल्लवाक्य—आमि पन सौदरस नावि छस लमान।
(कश्मीरी) कति बोज़ि साहिब त में ति दियि तार।
(हिन्दी) कच्चे धागे सागरसों में नैया खेवत जाय।
जो सुन लेते साजन मोरी नैया पार लगाय॥

आपकी हिन्दी कविता 'देवदास का दृश्य' बहुत प्रसिद्ध है।

कश्मीरी साहित्यकार के रूप में नादिम

नादिम साहिब आरम्भ में अंग्रेज़ी, उर्दू, हिन्दी तथा हिन्दुस्तानी में अपने भाव प्रकट करते रहे।

बाद में अपनी माता के अनुरोध पर तथा कई कश्मीरी प्रेमियों के कहने पर जिनमें मिर्जा गुलाम हसन बेग 'आरिफ़' भी एक थे, कश्मीरी भाषा में कविता करने लगे। समय और इतिहास साक्षी हैं कि ऐसी कविता करने लगे कि कश्मीरी भाषा को चार चाँद लग गए। उस समय की 'कोंग पोश', और 'गुलरेज़' पत्रिकाएँ साक्षी हैं। आपने कश्मीरी भाषा में अँग्रेज़ी भाषा की (सिनफ़ें) बरतना शुरू किया। जैसे सॉनेट (Sonnet) आप ही ने शुरू किया। मुक्त छंद (Free verse) का अनुभव किया। पहले-पहले छंदबद्द कविताएँ लिखीं। आपके मन में

निर्धनों, मज़दूरों और श्रमिकों तथा कृषकों के प्रति असीम सद्भावना तथा प्यार है। उनके दुख-दर्द को आपने समय-समय पर भाँप लिया है और अपनी कविताओं में प्रकट किया है। आपके विचार सर्वोच्च स्थान पर उड़ान करते हैं। आपकी भाषा तथा आपका ढंग अपना है। जिसको दूर से ही नादिम की कृति कहा जाता है। आपने कश्मीरी साहित्य में यथायोग्य तथा नई पीढ़ी के लेखकों में से सर्वोच्च बढ़ावा किया है।

नादिम आज केवल नादिम नहीं। नादिम स्वयं एक दौर है जिसमें नादिम और उसके सारे हमउम्र तथा उसके दौर के कवि तथा लेखक सम्मिलित हैं। नादिम ने कश्मीरी लेखकों के लिए नए पथ और नई राहें ढूँढ़ निकालीं। आप ही की बुद्धिमत्ता, अनुभवों तथा आपके अपूर्व अध्ययन से कश्मीरी कविता रिवायत से बाहर निकलकर स्वतंत्रता की साँस लेने लगी। लेखकों तथा कवियों के पथप्रदर्शक बनकर नादिम साहिब ने नई-नई मंज़िलों के रहस्य को हम तक पहुँचाया। कश्मीरी साहित्य में आपका स्थान बहुत ऊँचा है।

आपने Operas लिखे जो अपने देश में ही लोकप्रिय तथा प्रसिद्ध नहीं हुए बल्कि उनके अनुवाद विदेशी भाषाओं में भी हुए। उदाहरणतया 'बोम्बुर येम्बरज़ल' के सोवियत देश में बहुत बार अनुवाद प्रकाशित हुए। उनको रंगमंच पर खेला भी गया। 'हीमाल नागिराय', 'वितस्ता', 'नेकी बदी', 'शिहिल्यकुल', 'अख पोश अख सोदुर' बहुत ही लोकप्रिय हैं। आपकी कविताओं के अनुवाद और-और भाषाओं में छपते रहते हैं। आपकी कृतियाँ आपके मुख से निकलने के साथ-साथ ही प्रकाशत होती रहीं। कश्मीरी भाषा से सम्बन्धित कौन-सी पत्रिका, पुस्तक अथवा साहित्यिक लेख होगा जिसमें आपकी मूल्यवान कृतियों का उल्लेख न किया गया हो। सच तो यह है कि नादिम की कृतियों तथा नादिम के प्रयत्नों तथा नए-नए अनुभवों के बिना कश्मीरी साहित्य अधूरा है।

आपने विश्व शांति के लिए बहुत कोशिशें की हैं। आपके लेख तथा आपकी कविता दिलों को हिलाने वाली हैं। उनमें जोश और उत्साह, दर्द और अनुमान तथा आशावादी सद्भाव दृष्टिगोचर होते हैं। आप बड़े क्रांतिकारी कवि हैं। आपने देशभक्ति को काफी कुछ दिया है। 'जंगबाज खबरदार', 'ब ग्यव न अज़' मैं आज नहीं गाऊँगा। व दिम न रथ पनुन कुनुन। मैं अपना रक्त बेचने नहीं दूँगा। ज़ायो ज़ (तोलने वाले की गिनती), दपान जंग छु वोथवुन पगाह गोछ न सपदुन (कहते हैं जंग होने वाली है। जंग कल न हो जाए, कल न हो जाए।)

सच, ऐसे कवि ने कभी भी अपने काव्य ग्रन्थ को प्रकाशित करने का प्रयत्न नहीं किया। जहाँ कुछ कहा वहाँ ही छोड़ दिया। बहुत लोग आपकी कृतियों को इकट्ठा करने की ओर लगे हैं। वैसे तो नादिम कश्मीरियों की ज़बान-ज़बान पर हैं।

आप अपने कमरे की दीवारों पर कोयलों से लिखते थे, कहीं कागज की परचियों पर लिखते थे—जब तक कि आपकी कमाई तथा आय में थोड़ी वृद्धि न हुई।

सोवियत देश तथा चीन की यात्राएँ

आपने Indo-China Peace के लिए बहुत काम किया। आपको Indo-China Peace Mission १९५१ में चीन भेजा गया। वहाँ आपका बड़ा मान किया गया। चीन में रहने के समय आपने माऊ ज़े तुंग से भेंट की। आपके काम को वहाँ भी सराहा गया। आपने वहाँ Shama Bhrtt जिसको चीनी Sam Brtta कहते हैं (एक कश्मीरी लेखक) का उल्लेख किया तथा इनकिशाफ किया। उसने चीनी भाषा का व्याकरण लिखा था।

आपको सोवियत देश भी जाने का अवसर मिला। आपको Indo-Soviet Land Relations के काम पर नेहरू एवार्ड Nehru Award मिला। जिसके फलस्वरूप धनराशि के अतिरिक्त आपको सोवियत देश की यात्रा भी कराई गई। वहाँ उन दिनों हमारे देश भारत के Ambassdor हमारे कश्मीरी श्री डी० पी० दर थे। वहाँ पर नादिम साहिब को अचरज हुआ जबकि वहाँ की साहित्यिक यूनिवर्सिटी में एक-दो साहित्यकारों को नादिम साहिब पर ही पी-एच० डी० करते हुए पाया। अपने बहुत सारे नुस्खे कविताओं के प्रकाशित पृष्ठ देखकर आपको हैरानगी हुई।

आपकी प्रसिद्धि ने कश्मीर का नाम उज्ज्वल किया और वह भी विदेशों में।

आजकल ऐसा है कि जिस बड़े साहित्यिक सम्मेलन में नादिम साहिब उपस्थित न हों, वह बैठक ही फीकी-फीकी लगती है। कवि सम्मेलनों की तो बात ही नहीं।

अंत में यह कहना आवश्यक समझता हूँ कि नादिम साहिब को बहुत निकट से देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है मुझे। नादिम साहिब साहित्यकार होने के अतिरिक्त आर्टिस्ट भी हैं, डाक्टर भी, ज्योतिष भी और बड़े अनुभवी शिक्षक भी हैं। स्कूल की दीवारों पर आपकी लिखाई आपके अध्ययन, आपकी कला, आपकी क्षमता तथा आपकी तीव्र बुद्धि की प्रतीक है। जिसकी छाप मेरे तथा मेरे पूर्व वर्णित सहपाठियों की स्मृति में सदा-सर्वदा हरी रहेगी। भगवान हम सब पर आपका साया सहस्रों वर्षों बरावर रखे। कश्मीर के इस सपूत की विख्यात प्रसिद्धि चहुँ दिशाओं में फैले।

शालाकदल — पृथ्वीनाथ 'सायिल'

श्रीनगर

"नादिमः आदिमः आदिमो नादिमः"

कश्मीरी भाषा और साहित्य के वर्तमान युग के स्रष्टा प्रजापति क्रान्तदर्शी कवि को मैं नादिम के बदले आदिम उपाधि से पुकारना ज्यादा पसन्द करता हूँ, मुझे नादिम साहिब के विषय में अपने विचार अभिव्यक्त करने के लिए कहा गया तो स्वतः मेरे अन्तःकरण से एक उक्ति का उदय हुआ—

"नादिमो नादिमः असत्यं अलीकं
नादिमो आदिमः आदिमो नादिमः ।"

वास्तव में यह अन्तःकरण के मध्य छिपी उस भावना की प्रतिध्वनि है जो बार-बार मुझे विवश करती है विचारने पर कि क्या यदि पंजाबी, उर्दू या हिन्दी का कोई मूर्धन्य और आदिम कवि-शिरोमणि होता तो उसे जिस सम्मान से विभूषित किया गया होता क्या वह 'नादिम' को कश्मीरी समाज और कश्मीरी सरकार से प्राप्त हुआ ? नहीं ! नहीं !

कारण एवं उत्तर स्पष्ट है । नादिम साहिब के प्रति सजग कश्मीरी भाषा के प्रेमियों के हृदय में जो सम्मान है वह अद्वितीय है । किन्तु कश्मीर गत कई दशकों से जिस सांप्रदायिक रोग से ग्रस्त है वह उसके मूल्य को आँकने में और उन्हें कवि-सम्राट के सिंहासन पर अभिषिक्त करने में बड़ी रुकावट बना हुआ है, आगे भी बनकर ही रहेगा । किन्तु मुझे यहाँ भर्तृहरि की सूक्ति का स्मरण हो रहा है कि—

अंबोजिनी वन विहार विलासं एव
हंसस्य हन्ति नितरां कुपितो विधाता।
न तस्य दुग्धजल भेद विधौ समर्थाम्
वैदग्ध्यकीर्ति अपहर्तुं असौ समर्थः ॥

अर्थात् विधाता या शासक यदि राजहंस याने स्वतन्त्र चिन्तक पर व्यक्तिगत कारणों से कुपित हो तो दण्ड के रूप में वह मराल को कमल सरोवर में विहार करने से रोक सकता है। राजकीय सूत्रों से प्राप्त ऐश्वर्य से वंचित कर सकता है किन्तु उसके नीर क्षीर विवेक, उसकी रचना-शक्ति, उसकी प्रतिभा, उसकी कलात्मकत और सबसे बढ़कर उसकी धवलता को उससे वह छीन नहीं सकता।

नादिम अपने कौशल को व्यक्त करता ही गया। उसने जमाने की क्रूर गति से आम जनता को सावधान करना छोड़ा नहीं। उसकी प्रतिभा जिस कदर

सफलता से, मौलिकता से सामने आई वह उनके विरोधियों को भी स्वीकार होने पर मोहित करने लगी।

उनके विरोधियों की पाँत में मैं अपने को भी पाता हूँ। मैं गत तीन दशकों में सदा ही एक राष्ट्रवादी और भारतवादी के नाते अपने ढंग से कार्यरत रहा। मुझे नादिम साहिब की कम्युनिस्ट विचारधारा से सहमत होने का अवसर नहीं मिला। कभी-कभी तो मैं उनके विषय में एक कट्टरपन्थी के रूप में भी विचार करता था। मुझे ऐसे कुछ प्रसंगों का यहाँ उल्लेख करना अनुकूल प्रतीत होता है।

१९५३ में उन्होंने महज एक साम्यवादी होने के कारण कश्मीर को देश का एक अखंड अंग बनाने के लिए चलाए जा रहे आन्दोलन का विरोध किया। और उसके विरुद्ध प्रस्ताव भी पारित किया। उस आन्दोलन का अभिप्राय केवल धारा ३७० को हटा देने के साथ था किन्तु राजनीतिक मन्तव्य के आधार पर नादिम ने उसका समर्थन नहीं किया।

इसी प्रकार स्थानीय राजनीति के प्रभाव में आकर उन्होंने हिन्दी भाषा के समर्थन में कभी कोई जोरदार बात नहीं कही, यहाँ के प्रगतिशील कवियों और लेखकों ने जाने-अनजाने सत्ता की नीति के साथ नाहक चिमटकर अपनी सत्ता को निर्बल बना दिया। सिंहों ने दहाड़ना छोड़ दिया। इस कारण यहाँ की जनता को वे जो मार्गदर्शन देना चाहते थे, दे नहीं पाये। उनकी मशाल पूर्ववत् ज्वलंत और जाज्वल्यमान नहीं रही।

ऐसे कुछ और भी बिन्दु हो सकते हैं जिनको उभारा जा सकता है किन्तु इन कुछ बिन्दुओं के कारण उनका समग्र कृतित्व छिपाना असंभव है।

नादिम विधान परिषद में

एक अध्यापक के नाते मुझे नादिम साहिब की नेतृत्व-शक्ति का पूरा-पूरा एहसास है। उन्होंने जम्मू-कश्मीर के शिक्षकों को संगठित करने में बहुत सराहनीय कार्य किया। इसमें उनके साथ अर्जुन देव मजबूर, श्री बडेरा, श्री राजनाथ आदि भी सम्मिलित थे। श्री त्रिलोकीनाथ तिक्कू की सेवायें भी इसमें सराहनीय हैं। शिक्षक समुदाय ने इसके बदले उन्हें विजयी बनाकर अपने प्रिय प्रतिनिधि के तौर पर विधान परिषद में भेजा। वहाँ भी आपने शिक्षक समुदाय का प्रतिनिधित्व किया।

विदेशों में सम्मान

आपको चीन के शासकों ने निमन्त्रण देकर सम्मानित किया, यह चीन का वह समय था जब मोत्सेतुंग वहाँ के एकाधिपति थे। जहाँ चीन सरकार ने आपकी

विचारधारा के लिए आपको महत्त्व प्रदान किया वहाँ आपकी अद्भुत प्रतिभा के लिए भी आपका स्वागत किया।

कुछ वर्ष पहले रूस की सरकार ने आपकी प्रतिभा को प्रमाणित करते हुए आपको आर्थिक रूप से भी प्रश्रय दिया। आप वास्तव में केवल मात्र कश्मीरी कलाकार हैं जिनकी ख्याति देश के बाहर भी उज्ज्वल हुई।

यह रही बात उनके अन्य गुणों की वर्णना की किन्तु नादिम को जो बात अजर और अमर बनाती है वह है उनकी अद्वितीय एवं मौलिक प्रतिभा!

भर्तृहरि ने लिखा है—

जयन्ति ते सुकृतिनः रससिद्धाः कवीश्वराः
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम्॥

वे सरस कविशिरोमणि अजर और अमर हैं जिनकी धवल कीर्तिरूपी प्रतिभा दिग्विजयी होती है।

कविशिरोमणि नादिम

नादिम ने कश्मीरी भाषा की जो सेवा की है वह केवल मात्र संवेदनशील कवि की सेवा नहीं, वह उन महानुभावों की भी सेवा नहीं जो अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए जैसे-तैसे रचनाएँ करके मरालों की पाँत में बैठने की कोशिश करते हैं; उनकी सेवा उस विदग्ध राजहंस की शोधनापूर्ण शक्ति के सहारे विभिन्न दिशाओं में कश्मीरी कविता को विचलित करने की सेवा है।

नादिम ने शृंगार की परिधि से कविता को निकालकर उसे जनमानस की प्रियतमा बनाया। विद्रोही और विप्लवी होकर भी उसने बार-बार यह कोशिश की कि कश्मीरी कविता को छन्द, अलंकार, भाव, ध्वनि, नवीनता, लोकप्रियता, विविधता, संवेदनशीलता का स्वरूप प्राप्त हो।

कश्मीरी कविता को पढ़कर कोई यह कहने का दुःसाहस नहीं कर सकता कि इसमें बंगला जैसा माधुर्य नहीं, इसमें संस्कृत की गेयता नहीं, इसमें अंग्रेजी की तथ्यता नहीं। मुझे अच्छी तरह विदित है कि नादिम जी ने संस्कृत की निम्न कविता के आधार को लेकर कश्मीरी भाषा में इस छन्द का सफल प्रयोग किया—

"जटाटवी गलत् ज्वलत् प्रवाह पावित स्थले
गलेऽवलंबलंबितां भुजंगतुंग मालिकाम"

ऐसे एक नहीं अनेक छन्दों को कश्मीरी साँचे में ढालने की कोशिश उन्होंने सफलता के साथ की।

उनकी कवितायें आम जनता की कवितायें बनीं। मुझे याद है, उन्होंने १९५३ की साम्राज्यवादी ताकतों को असफल बनाने में लगे तत्कालीन कर्णधारों के साथ सहयोग करके उन साम्राज्यी साजिशों से आम जनता को अवगत कराया। उस समय

आप अपने यौवन में थे और संघर्षशील वृत्ति के सहारे धर्मक्षेत्र में कूद पड़े थे। उस जमाने की आपकी कवितायें शान्तिदूत की कवितायें थीं।

आज उनकी प्रबल और प्रखर वाणी की फिर उतनी ही आवश्यकता है जितनी तब थी।

उनकी कविता में आशा है, उनकी कविता में उज्ज्वल भविष्य की कामना है; उनकी कविता में दर्द है, उनकी कविता में कवित्व है।

मैं निःसंकोच होकर कह सकता हूँ कि नादिम ही वास्तव में कश्मीरी कविता का आदिम है, कोई महानुभाव इसे गलत न समझें।

मैं लल्लद्यद, अरनियाल, हब्बा खातून या अन्यान्य सूफी व वेदान्तवादी संतों की कविता को सर्वश्रेष्ठ महत्त्व प्रदान करता हूँ किन्तु नवीन युग की नई धारा को ध्यान में रखकर, विश्व की विचारधारा को न भूलकर, कश्मीर की अन्तरात्मा को सजग कर, साहित्यिक विधाओं को अपनाकर जो सेवा नादिम साहिब ने की है और कर रहे हैं, वह उन्हें अवश्यमेव आदम या (संस्कृत में) आदिम बना देती है।

प्रख्यात कविताएँ

१. जंगबाज खबरदार, २. म्य छम आश पगह च, ३. नावद ट्यठ व्यन।

उनकी कविताओं में जो गहराई पाई जाती है वह परावाणी के स्तव से उद्धृत दैवी वाणी है। कभी-कभी मैं विचारता हूँ कि क्या नादिम साहिब को स्वयं भी इन कविताओं की काल और दिशा को लाँघकर व्यक्त करने वाले अर्थ और कल्पना लोक का अहसास है।

उनकी कवितायें नवीन युग की होकर भी रहस्यमयता से खाली नहीं; उन्हें समझने के लिए पाठक को जरा सबर से काम लेना पड़ता है। इन कविताओं में जिस आन्तरिक भाव को कवि बहुत ही सरल किन्तु गूढ़तम अर्थ में प्रस्तुत करता है, वह उनकी मौलिकता एवं उनके वास्तविक कवि को सामने लाता है।

कश्मीरी भाषा के अन्य कवि यदि नादिम की इस गहराई को अपनाने का प्रयास कर अपनी प्रतिभा का उन्मेष करें तो नादिम की कवि-परम्परा को अक्षुण्ण रखना संभव होगा।

मैं राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के इस सराहनीय कदम की भूरि-भूरि प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता। हमारे लिए ऐसे प्रतिभाशाली युग-चिन्तकों, राजनीतिज्ञों, कर्मठ व्यक्तियों को जीते-जी सम्मान प्रदान कर उऋण होना आवश्यक है।

मैं उनकी कुछ कविताओं का यहाँ संस्कृत रूपान्तर प्रस्तुत कर रहा हूँ। पाठक को नादिम की कवित्व-शक्ति का परिचय प्राप्त हो, इसके साथ ही इस लघुकाय

लेख को समाप्त करने से पूर्व मैं कवि महोदय से स्वयं प्रार्थी हूँ कि वे गत पांच दशकों की राजनीतिक अवस्था को तथा विशेषकर अपनी कविताओं को संगृहीत करने का बीड़ा उठायें।

आपने अन्तिम डोगरा शासक महाराजा हरिसिंह, शेख अब्दुल्ला, बख्शी गुलाम मुहम्मद तथा सादिक साहिब के कालखंडों को निकट से देखा है। आपके सहयोग और दिशा-निर्देश में हम तथ्यपूर्ण इतिहास के संकलन में सफल हो सकते हैं।

हममें से बहुत कम पाठक इस बात से परिचित होंगे कि अंग्रेजी शासन को उखाड़ फेंकने में जो कोशिश सारे देश में हो रही थी उसी श्रृंखला में कश्मीर में कई महानुभाव जुड़े हुए थे जिनमें नादिम साहिब का नाम भी लिया जाता है। इस दृष्टि से कश्मीर की 'कलचरल एकेडेमी' नादिम साहिब से काफी लाभ प्राप्त कर सकती है। अन्य साहित्यिक तथा सांस्कृतिक संस्थाओं को भी इस दिशा में पहल करनी चाहिए।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति से मेरा विशेष आग्रह है कि नादिम साहित्य का संकलन नागरी लिपि में प्रकाशित करें। स्वयं नादिम साहब को भी अपनी प्रकाशित-अप्रकाशित कविताओं को संगृहीत कर सुरक्षित करने का अवसर प्रदान करें।

—पुष्कर

लेखक
पं० मोतीलाल
लीला-निवास
गणपतियार
श्रीनगर (कश्मीर)

नादिम साहित्यकारों की नजरों में

अर्जुन देव 'मजबूर'
प्रमोद
जयकिशोरी चौधरी
कमला पारिमू
क० न० द०

नादिम की कविता में शब्द-चयन और काव्य-सौन्दर्य

'नादिम' कश्मीरी कविता को शैली के सन्दर्भ में बहुत कुछ दे गए हैं। नादिम की कविता का स्रोत कश्मीर में उस समय फूटता है जब कश्मीर पर साम्राज्यवाद की छाया पड़ने को थी। इनसे पूर्व 'महजूर' ने कश्मीर में राष्ट्रीय चेतना को वाणी दी थी। 'महजूर' ने अपने गीतों और ग़ज़लों में नयापन लाकर कश्मीरियों को अपनी पुष्पवाटिका की रक्षा करने का आह्वान दिया। उसने कहा कि बुलबुलों (कश्मीरवासियों) को उन पक्षियों से सचेत रहना चाहिए जो इस वाटिका में काँटे बोना चाहते हैं। यह काँटे फूट और वैमनस्य के काँटे थे। इनके विरुद्ध 'महजूर' ने सचेत रहने का सन्देश दिया। महजूर ने उस आज़ादी पर भी कड़े कटाक्ष किए, जिसने उन सब आदर्शों को पूरा न किया जो इससे सम्बन्धित थे। अपनी 'आज़ादी' शीर्षक कविता में आज़ादी के बाद प्रचलित काला धन्धा करने वालों, अपने घर भरने वालों, मोटरों में धूल उड़ाने वाले नवधनाढ्यों, भ्रष्टाचारी सरकारी कर्मचारियों आदि की खूब खबर ली है। 'महजूर' के गीतों को कश्मीर के गाँव-गाँव में गाया गया।

'महजूर' के समकालीन 'आज़ाद' थे। इनको कश्मीरी का पहला क्रान्तिकारी कवि कहा जा सकता है। आज़ाद ने अपनी गहरी सोच से सामान्य जीवन के विरुद्ध चलने वाली शक्तियों को भाँप लिया था। वे समाजवादी विचारधारा और क्रान्ति द्वारा स्थापित एक शोषण रहित समाज की स्थापना चाहते थे। उसे संघर्षमय जीवन से गहरा प्रेम था। अपनी कविता 'दरिया' में वे कहते हैं, 'मुझे मंज़िलों की ओर जाने वाली संघर्षमय यात्राओं में मज़ा आता है।' आगे कहते हैं, मैंने जीवन में रुकना सीखा ही नहीं; मेरा कर्त्तव्य बस आगे ही आगे बढ़ना है।

आज़ाद खुलकर श्रमजीवियों का पक्ष लेते हैं और अपनी कविता द्वारा उन्हें जागरण का शंखनाद देते हैं। उनकी कविता में कोई अस्पष्टता नहीं और वे सच-सच और स्पष्ट बात कहकर अपने युग की व्यथा को व्यक्त करते हैं। श्री दीनानाथ नादिम १९४७ में कश्मीरी कविता को एक नवीन शैली (Form) देकर सामने आते हैं। इस Form (शैली) में ज़ोर है और यह सर्वसाधारण को एकदम अपनी ओर आकर्षित करती है। १९४७ से १९५७ तक की कविताओं में नादिम के विषयवस्तु में साम्राज्यवाद, कृषक और श्रमिक तथा महायुद्ध के

खतरों के प्रति बलपूर्ण ललकार मिलती है। वे ज़ोरदार ढंग से देश तथाविदेश की जनता की समस्याओं को लेकर कविता करते हैं। वे साम्राजी धूर्तों को इस प्रकार ललकारते हैं—

ठहर ऐ कमीने आगे न बढ़
गंदी काली छाती लेकर
फसाद, फितना और कीना लेकर
हिरोशिमा नहीं है यह (कश्मीर)
जो तू इसे तबाह कर दे
तू मजबूत इरादों की ओर देख
मेरा देश जागृत है तू जरा नई
वसन्त तो देख
यहाँ के जल प्रपात गर्ज रहे हैं
तू ज़रा निशात और शालामार तो देख
जागरूक है मेरी मातृभूमि
तू ज़रा तूत वृक्ष के तेज़ कोइले और
आग भी तो देख

'नाबद ट्यठ व्यन' (कड़वा-मीठा) शीर्षक कविता लिखकर वे अपनी कविता को एक विशेष मोड़ देते हैं। इस कविता की शैली, इस का विषय और इसका Diction बिलकुल नया है। इसमें पूर्व की कविताओं की तरह तेज़ी नहीं और न ही इसमें कोई Challenge (ललकार) सुनाई पड़ती है। इस कविता में मनुष्य की गहरी से गहरी भावनाओं, भावुकताओं, ऐतिहासिक घटनाओं तथा अस्पष्ट इशारों द्वारा बहुत कुछ कहा गया है। यहाँ नादिम ने पाठक को अपने शाब्दिक इन्द्रजाल में फाँस लिया है। कविता के विषयवस्तु की अपेक्षा यहाँ पाठक का ध्यान एक विचित्र तकनीक, एक सुरम्य कला और एक दबी वासना की ओर जा पड़ता है। नादिम की काव्य-कला यहाँ आकर शांत सागर की तरह गहराइयों में खो जाती है और वह कहना क्या चाहते हैं यह आसानी से समझने की बात नहीं। इस प्रकार उनकी कविता एक नये चरण में प्रविष्ट होती है।

नादिम की कविताओं में हमें शब्द-चयन का बहुत सुन्दर संकेत मिलता है। वह शब्द लाते हैं उस कश्मीरी भाषा से जो कश्मीर के गाँव में अधिक प्रचलित रही है।

इन शब्दों में एक मधुर संगीत का अनुभव होता है जो अन्य शब्दों से मिलकर झंकृत होता है। इन शब्दों में भावनाओं का प्रेक्षण बड़े मार्मिक ढंग से होता है। इन शब्दों में एक खास विशेषता है और वह है इनमें कश्मीर की

धरती की बू-बास। उस धरती की बू-बास जहाँ प्रकृति नग्न हो उठती है जहाँ ज़र्रा-ज़र्रा कविता की तरह चमकता है और यदि कहा जाए कि जहाँ प्रकृति ही कवितामय है तो अनुचित न होगा। इन शब्दों में एक विचित्रता, एक कशिश, एक रस और कई रंग मिलते हैं। इन ही शब्दों से वे अपनी निरल उपमाओं को जन्म देते हैं। उनके शब्दालंकार ऐसे सुन्दर हैं कि आँखें विभोर होती हैं और इनका संगीत सुनने के लिए कान लालायित हो उठते हैं।

शब्द-चयन और काव्य-सौन्दर्य का सुन्दर मिश्रण हमें उनकी कविताओं के साथ-साथ उनके गीति-नाटकों (Opera) में अधिक सजीव होता दिखाई देता है। ओपेरा पर बात करने से पूर्व हम नादिम की कुछ अन्य कविताओं को लेते हैं। उदाहरणार्थ 'ओ सिन्धु के जल से'। इस कविता में कवि सिन्धु नदी की तेज बहती धारा को सम्बोधित करते हैं और उससे आग्रह करते हैं रुकने का ताकि उससे कुछ बातें हों। इस कविता में उन्हें पर्वत एक अटके हुए वनमानुस के समान लगता है जो ऊपर ही ऊपर छाल लगा रहा है। इसी पर्वत पर बादल का एक लम्बा टुकड़ा, कवि को गुच्छियों की एक कतार-सी लगती है जो किसी दरार के बीच से फट पड़ी हो। इसी प्रकार चन्द्र उन्हें ऐसा लगता है जैसे वह अपना अर्ध-नूपुर लिए बाज़ार की ओर बेचने निकला हो। सिन्धु नदी का चित्र वे कभी घने पेड़ों में एक चीखती सफेद बिल्ली से और कभी बिना बँधे स्वामिहीन घोड़े से हमारी आँखों के सामने खींचते हैं। यह घोड़ा अपनी चाल 'ठक ठिप' चल रहा है और चाँद की ओर देखता हुआ कहीं गायब हो जाता है। अब यह घोड़ा तेज चलना भूल गया है।

'शब्दों को दें हम क्या-क्या अर्थ' शीर्षक कविता का कवि स्वयं हैरान है कि शब्दों को अर्थ के कौन-कौन से वस्त्र पहनाए। अब शब्द-चयन के साथ शब्दों के अर्थ बदलने की इस युग की समस्या कवि को परेशान कर देती है। और वह सोचता है कि शब्दों के किन अर्थों द्वारा अपनी अभिव्यक्ति को पूर्ण करे। उसे मनुष्य नंगे मासूम पंक्तिबद्ध कमलों की तरह लगते हैं। इनमें यौवन की गरिमा है। इनको पददलित किया गया है, सड़क पर फूलों की तरह। इस कविता में कामदेव, चन्द्र, युवतियों, ग्राम सुन्दरियों, डोके पर खेलने वाली चपलाओं और अप्सराओं के साथी बदल जाते हैं अथवा कुछ और ही अर्थ देने का यत्न करते हैं।

अब ज़रा बात करें हम नादिम के गीति-नाटकों की। नादिम के प्रसिद्ध ओपेरों में 'बोम्बुर यम्बरज़ल' (नरगिस और भौंरा), 'नीकी बदी' (नेकी और बदी), 'हीमाल और नागीराय' और सब से बढ़कर 'वितस्ता' ऊँचे स्थान पर आता है। 'वितस्ता' ओपेरा में नादिम ने बहुत ही प्यारे-प्यारे, मीठे-मीठे, रस से परिपूर्ण और लोकगीत आधारित-गीतों को जन्म दिया है। गीत जो कश्मीर की

सुन्दर धरती से सम्बद्ध हैं, गीत जो कश्मीर के ऐतिहासिक तथ्यों से मालामाल हैं, गीत जो संगीत की धुनों पर मानव-मन को आंदोलित करते हैं। इस ओपेरा में 'नादिम' ने प्रतीकों द्वारा कश्मीर की आदिम जातियों अर्थात नाग और पिशाचों के सम्बन्ध को सुदृढ़ करने के ऐतिहासिक तथ्य को स्पष्ट किया है। नागों की प्रतीक है नील कुण्ड से जन्मी नाग-कन्या 'वितस्ता' और पिशाचों का प्रतीक है पद्म सर। अन्त में बीच की पर्वताकार रुकावटें कट जाती हैं। कामदेव वितस्ता का मेल वुलर-राज से कराने में सफलता प्राप्त करते हैं। 'वितस्ता' के मेंहदी लगती है। मेंहदी-रात को सहेलियाँ मेंहदी-रात के गीत गाती हैं। वितस्ता का विवाह सम्पन्न होता है और इसी कथा को नादिम के गीतों ने रंग देकर अमर कर दिया है। इस कथा का आधार 'नीलमतपुराण' और 'वितस्ता माहात्म्य' की महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं। ओपेरा में वितस्ता के उन सभी मुख्य तथा ऐतिहासिक स्थानों का ज़िक्र आता है जहाँ से वितस्ता गुज़रती है। वितस्ता पर फूलों की वर्षा होती है। इसमें जलते दीप बहते हैं और सबसे बड़ी बात कि इस आदि दुल्हन की कामना पूरी होती है। मेंहदी रात को गायन इस प्रकार होता है—

विवाह की भेंट हरमुकट गंगा को भेज
आज 'वितस्ता' की मेंहदी-रात है
तू ज़रा निशात और शालामार तो देख
ऐ अप्सराओ, प्रेम की माया के गीत गाओ
आज 'वितस्ता' की मेंहदी रात है
चाँदी और सोने के ज़ेवर लेकर देवता आए हैं
यह ज़ेवर वे नाग-बाला को पहनायेंगे
लगता है तारे पुष्प-वर्षा करने निकले हैं
आज वितस्ता नदी की मेंहदी रात है
इसका चाँदी का बदन सोने के जल से नहलाओ
इसका श्रृंगार प्यार और मुहब्बत से करो
यह प्रीत का व्यवहार करने आई है
आज वितस्ता की मेंहदी-रात है।

एक ओर गीत में वसन्त-बुलबुल के शुभागमन का वर्णन है। यह रंगोली का गीत इस प्रकार है जो स्त्रियाँ एक प्रकार का विशेष नृत्य करती हुई गाती हैं—

मैंने वसन्त की बुलबुल देखी
वह खिड़की के अन्दर आकर बैठ गई
मैंने उसे झूमते हुए देखा है
वह आकर शफतालू के छोटे वृक्ष पर बैठी है
मैंने उसे पुष्प एकत्र करते देखा है

वह आकर फूलों की झाड़ी पर बैठ गई है
मैंने उसे पर्वतों के ऊपर से देखा है
वह आकर पर्वत माला पर बैठ गई है
वसन्त की बुलबुल को मैंने देखा है
वह खिड़की में आकर बैठ गई है ।

इसी प्रकार अन्य सभी गीतों में जिनका आधार कश्मीर के लोक-गीत और लोक-संगीत है, कोमल, रंगीन और चुने हुए शब्द-प्रयोग से रस की धाराएँ फूट पड़ती हैं। संक्षेप में यह कि 'नादिम' को सौन्दर्य से अगाध प्रेम है। और यदि शैले (Shelley) की यह उक्ति सही मान लें कि 'सत्य सुन्दरता है और सौन्दर्य सत्य' तो यह मानना पड़ेगा कि नादिम ने सौन्दर्य द्वारा सत्य की ही स्थापना की है। वह सत्य जो सनातन है और जो मधुर भी है। इनके शब्दों में कश्मीर की झीलों की गहराई, रेशम की कोमलता, नीलम का रंग और मानवीय सत्यों की शीतलता मिलती है। इन शब्दों में गंगा की रवानी और वितस्ता की शान्ति है; इनमें कला की अनुभूति और डल के कमलों से बने मधु का माधुर्य है; इनमें हिम धवल शिखरों की गरिमा है; इनमें मानव मन की छनी हुई भावनायें हैं; इनमें प्रतीकत्व की उड़ान है और इनमें है कल्पना का रंगमहल। इसीलिए नादिम के यह गीत सदा-सर्वदा के लिए अमर हो गए हैं। इनका संगीत मानव मन को हमेशा आकर्षित करता रहेगा।

—अर्जुनदेव 'मजबूर'

द्वारा रेडियो कश्मीर
श्रीनगर

नादिम की कविता में प्रकृति-चित्रण

मन के भावों को उद्दीप्त करने के हेतु प्रकृति को एक अमोघ साधन गिनाया जाता है; विशेषकर श्रृंगार-काव्य में इसकी उपादेयता तथा सार्थकता का महत्त्व सर्वसम्मत रूप से स्वीकारा गया है।

इस तरह नायिका के उलझे सुरमई केश-पाश जब चाँद की रुपहली स्नेह-वर्षा से धुल उठते हैं तो नायक का आकर्षण, सम्मोहन बहुत ही बढ़ जाता है और वह अपनी प्रियतमा की धड़कनों को आत्मसात् करने की ओर प्रेरित हो जाता है, परन्तु नादिम के काव्य में श्रृंगारिकता गौण है जबकि यथार्थ का कटु-सत्य अपेक्षया अधिक मुखर हो उठा है; नादिम आत्म-निवेदन के लिए हृदय के स्थान पर मस्तिष्क को प्रधानता देने की ओर सर्वथा इच्छुक है। वह आदर्श की स्वप्निल कल्पना में आत्म-प्रवंचना को हेय समझता है, उसे गर्म-गर्म रेत में पाँव झुलसाने का निरूपण करना प्रेय है, अतः उसके काव्य में प्रकृति संगिनी न बनकर मात्र प्रेक्षिणी बन पाई है। जभी नादिम ने जहाँ-जहाँ पर प्रकृति का आवाहन किया, वह केवल कवि की टीस, घुटन और दर्द की पृष्ठभूमि में मन की इस ग्लानि को अधिक तीव्र और विश्वव्यापी रूप देने का सजग प्रयत्न है, कुल-मिलाकर उनकी कविता स्वान्तः सुखाय के साथ-साथ लोक हिताय का दायित्व अधिक जिम्मेदारी से निभाती आ रही है; जैसे—

"पर्वतों पर झरने हाथ से हाथ मिलाकर उछल-कूद कर रहे हैं, उन्होंने अपने वजते आँचल में रीते मोती पिरो दिये हैं, रात के अन्तिम प्रहर में जब चाँद बुझ रहा हो, कंकरों की शैया सँवारते हुए वे मौत की जवानी से खुशी-खुशी आलिंगित हो रहे हैं"—(गाशिरी से, रूपान्तर—लेखक)

अतः स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने व्याज रूप में प्रकृति-चित्रण को, केवल लोक-कल्याण हेतु मन के उबाल को, टीस को सशक्त वाणी प्रदान की है। प्रकृति का प्रयोग उल्लास का परिपोषण करने के बदले उदासी का वाहन बन पाया है। इसका प्रबल कारण यह है कि नादिम के विचारानुसार जब मानव शोषण, अत्याचार आदि के दूषित वातावरण से निकल कर सामाजिक न्याय की परिसीमा में प्रवेश करने लगता है तो उसे इस नये परिवेश को बदलने के लिए उग्रता से गतिशील होना पड़ता है, जीवन की स्वस्थ लय तब ही कायम रह सकती है, यदि इस मंजिल पर भी मानव हाथ पर हाथ धरे गति में

शिथिलता लाता है तो वह वास्तव में मौत कहलायेगी; इसी तरह जब पहाड़ी नद, नाले, झरने और प्रपात ऊँचाई से उतरकर अपनी गति खोकर समतल भूमि में मन्द पड़ जाते हैं, तो उनकी उपादेयता उतनी नहीं रह जाती है; नये जीवन की रूप-रेखा सँवारने के लिए सतत परिश्रम की अपेक्षा रहती है और इसी मूल-मन्त्र द्वारा मानव अपना भाग्य बनाने में समर्थ हो सकेगा; नादिम को जिस तरह की व्यग्रता, इस अनछुए ध्येय को पाने के लिए कुरेद रही है, उसी प्रकार की व्यग्रता, उग्रता वे प्रकृति में भी देखने को उत्सुक हैं।

प्रकृति को वे मनोविनोद की सामग्री न समझकर इसे इस मानसिक उथल-पुथल को स्वस्थ दिशा देने के लिए प्रेरणा के स्रोत-रूप में देखना चाहते हैं, प्रकृति का सौम्य-शान्त रूप इसीलिये उनके भाव-कोष के अनुकूल नहीं।

इस तरह यह बिल्कुल साफ हो जाता है कि नादिम का प्रधानतम विषय मानव है, प्रकृति के परिप्रेक्ष्य ने जहाँ-जहाँ भी उनके इस दृष्टिकोण की परिपुष्टि की है, वहाँ-वहाँ उन्होंने प्रकृति को उपेक्षित नहीं रखा है, जैसे—

"बहार की धूप-छाहीं छवियाँ बहुत ही प्रगल्भ मात्रा में देखने में आ रही हैं, हरे रंग पीले पड़ गये, परन्तु पीले रंगों में लाल छवि छाने लगी और उसे जोबन प्राप्त होने लगा, अब्बास[1] की भड़कीली छवि पुनर्जीवन पाकर नाड़ी को महकाने लगी, केवल एक ही अँगड़ाई से इसने कालिमा को संसार से बाहर खदेड़ दिया, यह सारा परिवर्तन मात्र एक ही क्षण में सम्पन्न हुआ, परन्तु बाला-पन को इसकी कोई खबर नहीं।" (हस्तलिखित प्रति से; हिन्दी रूपान्तर—लेखक)

इतना सब कुछ कहने पर भी हमें यह मानना पड़ता है कि नादिम कदापि निराशा से अभिभूत नहीं है; उसमें न थमने वाला साहस है, जिसकी गर्मी से उसे आने वाले कल की लालसा-भरी प्रतीक्षा है। अंग्रेजी कवि के शब्दों में—

"मैं आने वाले कल से भयभीत नहीं हूँ क्योंकि मैंने बीता हुआ कल अच्छी तरह देख लिया है, और मुझे आज से अतीव प्यार है।" नादिम का प्रकृति के प्रति संवेदनात्मक आक्रोश है, भर्त्सनापूर्ण आक्षेप कदापि नहीं।

नादिम ने प्रकृति का उपयोग उसी हद तक किया है जहाँ वह मानव को तथाकथित लोरी सुनाकर, अफीम खिलाकर निष्क्रिय और निश्चेष्ट न बना पाये; अपितु प्रकृति का दायित्व उनके मतानुसार मानव को झँझोड़ना, गतिशील और सक्रिय बनाना है, ताकि वह 'नई सुबह' की लाली के दर्शन शीघ्रातिशीघ्र कर सके। उदाहरणत :—

"हर कोई गुलि-लाला के रंगों का शैदाई है। परन्तु कितने उसकी आन्त-

१. कश्मीर का एक स्थानीय लाल फूल।

रिक पीड़ा की थाह ली ? सवेरे की किरण ने शायद सम्भ्रम में कलियों को गले का हार बना डाला; वसन्त से पहले ही फूलों की माँग कैसे बढ़ पाई, वे तो सम्भवतः दावत लुटाने गये हों, शाम के साये और बिजली ने मिलकर जाल बुन दिये और यह अधमरा दिल उसी जाल की तरफ हो लिया। सब तो समतल भूमि का कोना-कोना छान रहे हैं लेकिन नादिम ने अपनी पीठ पर्वत की ओर कर दी है।" (अंजित्त काशिर शायरी से; हिन्दी रूपान्तर—लेखक)

इस तरह हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि नादिम का प्रकृति के उग्र रूप के प्रति स्पष्ट कारणों से मोह है, वे उसके सौम्य-शान्त, धीर-गम्भीर रूप से प्रभावित नहीं हो पाये हैं, प्रकृति के आँचल में वे अंगारे भरना चाहते हैं, मोती कदापि नहीं।

६३/१ गणपतियार
श्रीनगर, (कश्मीर)

—मोतीलाल 'प्रमोद'

नादिम की कविता का भाव-पक्ष

(संक्षिप्त परिचय)

भाव-पक्ष का प्रत्यक्ष सम्बन्ध उस विषय से है जिसका प्रतिपादन कवि अपनी रचना में करना चाहता है। इस विषय के अन्तर्गत उसके विचार, आस्थायें, अनुभव और अनुभूतियाँ भी शामिल हैं, इस तरह भाव-पक्ष वह कन्वास है जिसमें कवि अपनी कल्पना द्वारा सजीव रंग भरना चाहता है।

परन्तु इसके साथ ही यह कहना भी समीचीन होगा कि विषय अपने इर्द-गिर्द के माहौल से कदापि अछूता नहीं रह सकता। वास्तव में इस परिवेश की सार्थक अभिव्यक्ति साहित्य द्वारा ही सम्पन्न हो सकती है। मनोवेगों को कविता तब ही झंकृत कर पाती है जब वह लोक-जीवन के समीप हो। जन-मानस के साथ कविता का तादात्म्य तब ही सम्भव है। इस तरह प्रत्येक युग का साहित्य उस युग का प्रतिनिधि और प्रहरी बन जाता है।

नादिम के पहले कविता केवल रोमानी धड़कनों को मुखरित करती आ रही थी, इसका प्रबल कारण यह था कि जनता स्वतन्त्रता के अभाव में शोषण और अत्याचार के दो पाटों के बीच पीसी जा रही थी; निरंतर आतंक के बोझ तले उसका साहस और समारम्भ स्तम्भित हो गया था; ऐसे भयावने समय में लोगों के पास कटु जीवन से पलायन करके रोमानी कविता से कुछ मिठास उधार लेने के सिवा और कोई विकल्प नहीं था।

यद्यपि लोगों के बुझे हुए साहस को फिर से प्रदीप्त करने हेतु 'महजूर' ने यह युगान्तकारी शंखनाद किया था—

"ऐ माली ! नवबहार की शान पैदा करने में जुट जाओ, भूकम्प, झंझा, तूफान और मेघगर्जन का वातावरण पैदा करो।" (मूल कश्मीरी से रूपान्तर—लेखक)

आजाद ने इसी क्रान्तिकारी स्वर से अपना स्वर मिलाकर यह जयघोष किया—

"आज मुझमें जवानी का उन्माद है, आज मुझमें प्यार की तिलमिलाहट है, मैंने कितने ही पुण्य और पाप कमाये, जिनका शुमार अब तुम आने वाले कल पर छोड़ दो, 'आजाद' का यह सोज और साज़ अच्छी तरह बूझ ले; ज्वाला और आग, सहनशील मन तैयार रख।" (मूल कश्मीरी से रूपान्तर—लेखक)

नादिम द्वारा ही इन सशक्त संकेतों को सजीव वाणी मिल पाई। समय संक्रान्ति का था। प्राचीन आँखें मीचने के लिए विवश था और नवीन आँखें खोलने के लिए बाध्य। इस संक्रमण की प्रसव-पीड़ा ज़ोरों पर थी और नादिम को पूरा विश्वास था कि इसकी समाप्ति पर निःसंशय ही बनते-बिखरते नवीन का जन्म होगा। और निदान उनका विश्वास मनचाहा रंग लाया; बिखराव की अँधियारी को निर्माण के प्रकाश से इस प्रकार नादिम ने धो डाला—

"धनवान का अहं और उसके सिर पर क्या ताज कायम रहेगा? मात्र काठ के पुतलों के हाथों में सत्ता रहेगी? एक के पास पर्याप्त धन रहेगा और दूसरा मुहताज बना रहेगा? यह सब मैंने घमण्डी सरमायदारों से पूछना है, और उगती हुई नवबहारों से यही सवाल करना है।" (मूल कश्मीरी से रूपान्तर—लेखक)

इससे स्पष्ट है कि नादिम आर्थिक असमता को समूल नष्ट करना चाहता है; और इस प्रकृति ने कवि की कल्पना को सींचने के लिए नितान्त नयी भावभूमि का श्रीगणेश हुआ; नादिम जहाँ अपने काव्य के कला-पक्ष में युगान्तर लाया, वहाँ अपने स्वप्नों को साकार करने के लिए नये-नये विषयों की ओर झुकने की स्वस्थ प्रवृत्ति दिखानी आरम्भ की। यह भावना परम्परा के बन्धनों से मुक्त होने का मूलमन्त्र था; पारम्परिक परिवेश बदल चुका था, जिसके प्रभाव से नयी आस्थाओं का पोषण समय की माँग था, जिसे नादिम जैसे संवेदनशील कवि ने यथेष्ट मात्रा में पूरा किया। 'गुलोबुलबुल' की पलायनशील कविता की अब कोई उपादेयता न रह पाई थी, अब आवश्यकता इस बात की थी कि लोक-मानस को इस परिवर्तन को अपनाने के लिए प्रेरित किया जाये; नादिम ने जहाँ अतीत की आस्थाओं को दफन करने का साहस दिखाया, वहाँ नवीन के प्रति जोरदार आग्रह से लोगों के बिम्बशील मन को पूरी तरह तैयार करने की विदग्धता का भी परिचय दिया, जैसे—

"तुम आपनी खोई हुई बढ़ाई का रोना रो रहे हो, और मैं यौवन के उन्माद में चूर हूँ। तुझ में निश्चेष्टता और मुझ में जागरूकता, तुझ में तिलमिलाहट और मुझ में उत्साह ठाठें मार रहा है।" (मूल कश्मीरी से रूपान्तर—लेखक)

इसके अतिरिक्त नादिम ने ठेठ कश्मीरी मुहावरे और शब्द-भण्डार का खुले दिल से प्रयोग किया है, इस प्रयोग को सर्वप्रथम अपनाने में भी नादिम का 'आज' के प्रति विश्वास अडिग रहा, जैसे—

"पता नहीं कौन सी नई आशा अंगड़ाई लेने लगी, और जिस लता का ओढ़ना छिन चुका था, उसे रतजगा-सा प्रतीत होने लगा है। पर्वत-शिखरों की उँगलियों पर दिनोंदिन रंग चढ़ने लगा, और घास के तिनकों ने स्नेह से अभिभूत

अपनी सुराही खोल दी।" (मूल कश्मीरी से रूपान्तर—लेखक)

इस अनुवाद द्वारा इस पद्य में व्यवहृत काश्मीरी मिज़ाज का स्वाद केवल कश्मीरी भाषा के जानने वाले ही ले सकते हैं। इसी नवीन डगर—विषय तथा विषयानुकूल भाषा—के लौकिक संबल में ही नादिम की सर्वप्रियता निहित है।

बुद्धगिरि, आलीकदल
श्रीनगर

जय किशोरी चौधरी 'जेलखानी'

नादिम के काव्य में व्यवहृत भाषा

(संक्षिप्त ब्योरा)

सम्प्रेषण—अपने मन के उबाल को दूसरे तक पहुँचाना—प्रत्येक साहित्यिक रचना का एक विशिष्ट गुण माना गया है, और इस सम्प्रेषण का सशक्त वाहन भाषा है। काव्य कितना ही उत्तम कोटि का क्यों न हो परन्तु यदि उसमें व्यवहृत भाषा उतनी सबल और मर्मस्पर्शी न हो तो काव्य शिथिल और आधा-अधूरा रह जाने का भय हर समय लगा रहता है, और कवि की कल्पना दिल मसोसकर रह जाती है। इस कृति का यथेष्ट ध्येय लोक-जीवन के लिए धूमिल-सा बन जाता है; अतः काव्य के भाव-पक्ष के साथ-साथ कला-पक्ष का महत्त्व भी उतना ही अनिवार्य है।

कश्मीरी साहित्यालोचक वामनाचार्य ने तो इसी लक्ष्य को उजागर करने हेतु यहाँ तक कह डाला—'रीतिरात्मा काव्यस्य'। विशिष्ट पद संघटना और अनुकूल शब्द-चयन तो काव्य की आत्मा है; कभी-कभी यह तर्क भी दिया जाता है कि संवेदनशील कवि का अपने भावों की तीव्रता और प्रगल्भता के कारण भाषा पर कोई अधिकार नहीं रह पाता। परन्तु इसके साथ हमें यह भी स्वीकारना होगा कि कवि कभी भी भाषा का प्रयोग नहीं करता, वह पहले से इसकी तैयारी नहीं करता, जैसे-जैसे उत्तम भाव उसके मन से बाहर प्रकट होने लगते हैं, वैसे-वैसे स्वतःसिद्ध वे अपने लिए रास्ता प्रांजल बनाते जाते हैं। जिस प्रकार एक उफनती नदी आगे बढ़ने के लिए स्वयं रास्ता ढूँढ़ती है, और अपनी गति के प्रवाह को मन्द नहीं पड़ने देती, उसी तरह कवि में जितनी मौलिक प्रतिभा हो, उसी के संवेग के अनुपात में ही शब्द उसकी ज़बान पर आते रहते हैं। इस सन्तुलन को कायम रखने के लिए उसे कोई उल्लेखनीय परिश्रम नहीं करना पड़ता है और उसकी रचना स्वान्तः सुख और लोक-हित का दोहरा दायित्व अनायास ही निभाती जाती है। सम्भवतः इसी सत्य को उजागर करने के लिए एक अंग्रेज आलोचक ने कहा है—"शैली मनुष्य की असली पहचान है।"

जब समाज में नई आस्थाएँ, मान्यताएँ और मूल्य कदम जमा रहे हों, तो इन्हीं नवीन तकाज़ों के अनुकूल कवि की वाणी भी नया चोला पहनने के लिए उद्यत हो जाती है, ताकि इन नवीन मूल्यों का यथेष्ट प्रचार हो सके और इसके साथ ही जन-जीवन में इनका वरण करने के लिए मानसिक परिवर्तन की भाव-

भूमि सँजोई जा सके। अतीत से कट जाने के लिए उसे उत्साहवर्धक प्रेरणा दिया जाना सुलभ हो सके। नादिम मूलतः नवीन का गायक है, अग्रदूत है; जिसने जिस प्रकार काव्य के पारम्परिक विषयों से विद्रोह किया, उसी तरह नवीन के प्रति उसके अडिग मोह के कारण नई शैली अपनाने में कोई भी बाधा सामने न आई, जिसके फलस्वरूप उसकी कविता तुक के बन्धन को विदा करके अतुकान्त की स्वच्छन्द परन्तु सतर्क सरणी के प्रति स्पष्ट कारणों से आकृष्ट हुई, जैसे—

ग्रीष्म की दौड़-धूप और न हिमपात की शर्त लगानी
मुस्काता चाव बुझता स्नेह
यह चोर सब कुछ झाड़ू देकर चुरा ले गया
अब मेरे पास क्या रह गया
एक टूटी-फूटी काँगड़ी
और उसमें बर्फ की एक ढल्ली।

(मूल कश्मीरी से रूपान्तर)

इस तरह हम पर स्पष्ट हो जाता है कि नादिम की कविता छन्दों के घिसे-पिटे अंकुश को स्वीकार न कर सकी, परन्तु इसके साथ अतुकान्त कविता को प्रभावोत्तेजक बनाने के लिए उसने इस प्रकार के नवीन माध्यम में लय और ताल को बड़ी सावधानी से सुरक्षित रखा, जैसे—

अन्तर में शीशा टूटने की-सी आवाज हुई
सारा जग तेरी ओर टकटकी बाँध देख रहा है
मेरी ओर भी यदि तू देख ले इसमें क्या पाप होगा
अविश्वासी नादिम पता नहीं किस संसार में विचर रहा है।
उसे तो जाना ही था मगर क्या पता
वह देख कर ही चल पड़ा हो?

(मूल कश्मीरी से रूपान्तर)

इतना ही नहीं, भाषा का सौष्ठव बढ़ाने के लिए उसने नये उपमान गढ़ लिए, जिनमें स्वदेशी महत्त्व का निखार जोबन पर है, इस तरह संस्कृत-फारसी में व्यवहृत पारम्परिक काव्यालंकारों के बदले उसने कश्मीर की प्रकृति से काम लेने की ओर अधिक रुचि दिखाई, साथ ही मानव-जीवन के दैनिक क्रिया-कलाप का भी उसने इस दिशा में विपुल प्रयोग किया है, जैसे—

हमारा वतन एक मन-भावन गाँव सा है
जैसे शाली की निलाई करके किसान

चिनार के साये में सुस्ता रहा हो
डल झील के किनारे उतरती संध्या-सा
बादाम की पहली कोंपल-सा
जैसे बहुत समय के बाद मामा गाँव से
सेब लेकर आया हो
माँ की छातियों का एक घूँट-सा ॥

(मूल कश्मीरी से रूपान्तर—लेखक)

—कमला पारिमू

सत्थू बरबरशाह
श्रीनगर (कश्मीर)

कश्मीरी कविता और 'नादिम'
(एक मूल्यांकन)

कहा गया है कि प्राचीन परम्परा कितनी ही कल्याणकारी क्यों न हो, परन्तु इसे नवीन मान्यताओं के लिए जगह बनानी पड़ती है ताकि मानव का बिम्बग्राही मस्तिष्क वितृष्णा का शिकार न हो जाए और इसकी सृजनशीलता पर ताले न पड़ जाएँ; नवीन की बनती-सँवरती रेखाओं के संबल से ही मानव का मानसिक स्वास्थ्य बना रहता है और वह इस तरह ही नये अनछुए क्षितिजों तक उड़ान भरने की सामर्थ्य बटोर सकता है; जीवन इसीलिए परिवर्तन का स्वागत करने के लिए हर समय अपनी मानसिक भावभूमि सँजोता रहता है; कश्मीरी कविता का विकास इस सत्य का बहुत ही ज़ोरदार परिचायक है।

चौदहवीं शताब्दी में जब यहाँ प्राचीन दम तोड़ रहा था और नवीन का उत्साह ज़ोरों पर था तो ऐसी आँखमिचौली के वातावरण में कश्मीरी मेधा ने अपनी धड़कनों की प्रतिध्वनि कविता को सौंप दी; इस तरह हिन्दू-संस्कृति के खँडहर पर कश्मीरी जनमानस ने इसके प्रति अपना आभार दिखाने के लिए दीपदान किया; इन बुझते हुए कोयलों में से लल्लेश्वरी ने अतीव सजीवता तथा सतर्कता से एक ऐसी पावन ज्वाला जगाई जिसके भव्य प्रकाश ने आज तक बराबर जन-जीवन की आस्थाओं को आलोकित कर रखा है। लल्लेश्वरी ने कश्मीरी शैव-दर्शन की पद्यात्मक प्रतिलिपि को अपने अनुभव तथा अनुभूति से भिगोकर एक ऐसे जीवन-दर्शन की स्थापना की जो कश्मीरियों की अमूल्य बपौती कहलायी जा सकती है। इस प्रकार हम बिना किसी अपवाद के कह सकते हैं कि कश्मीरी कविता का श्रीगणेश रहस्यवादिता से हुआ, जिसकी सार्थक परिणति के लिए शितिकण्ठ ने प्रारूप तैयार कर रखा था। लल्लेश्वरी ने इसी डगर पर चलकर कश्मीरी कविता में भावों की गम्भीरता तथा प्रौढ़ता की अक्षय निधि जनता के मननशील व्यक्तित्व को उजागर करने के लिए साहित्य के प्रति अपना दायित्व पूरा किया, साहित्य और समाज में एक ऐसी मधुरता की पैवन्द लगा दी जिस की मिठास अभी तक सरस है, प्रेरणादायिनी और प्रवणशील है।

जैसा स्वाभाविक था, इस्लाम ने सामाजिक और राजनीतिक स्तर पर जब कश्मीर में प्रतिष्ठा पा ली, तो हिन्दू-विश्वासों को धक्का-सा लग गया; पारस्परिक तथा स्वदेशी मान्यताओं के स्थान पर, यहाँ पर मध्य एशियाई संस्कृति का

पदार्पण हुआ, जिसके फलस्वरूप कविता के विषय तथा माध्यम में एक युगान्तर के दर्शन हुए। संस्कृत की उपादेयता समाप्त हो गई और कश्मीरी मनीषा ने फारसी से प्रेरणा प्राप्त की; और जब हब्बा ख़ातून (सोलहवीं शताब्दी) ने अपने दर्दीले गीत रच डाले तो उन पर फारसी का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होने लगा; परन्तु इसके साथ ही इन घनघोर बादलों में से एक प्रांजल रजत रेखा के दर्शन भी होने लगे, यह था ईरानी सूफीवाद; साहित्य ने ऐसे धर्म-संकट में अपना दायित्व इन दोनों—हिन्दू और मुस्लिम—रहस्यवादी धाराओं का स्वस्थ मेल करवा के निभाया। इस मानसिक आदान-प्रदान से कश्मीरी एक ऐसा जीवन-दर्शन निर्मित करने में सफल हो पाये जिसमें संस्कारवश हिन्दू अध्यात्मवाद और वातावरण वश इस्लामी सूफीवाद का प्राणवान समन्वय दृष्टिगोचर होने लगा; मुसलमान सूफी कवियों ने यद्यपि इस्लामी मान्यताओं को ईरानी आदि रहस्यात्मकता के परिवेश में वाणी प्रदान की, परन्तु कश्मीरी शैव-दर्शन के साथ सामीप्य होने के कारण शम्स फ़कीर आदि रहस्यवादी कवियों की रचनाओं पर शैव धर्म का प्रभाव भी साफ तौर पर झलकने लगा, इस दोहरे दायित्व को निभाने से इन सूफी मनीषियों ने हिन्दू तथा मुसलमान मस्तिष्क को एक समान खाद्य-सामग्री प्रस्तुत की, और यही प्रबल कारण है कि कश्मीरियों में सहिष्णुता, धर्मनिरपेक्षता तथा उदारता ने घर कर लिया है। इस प्रकार की ज्वलन्त तथा प्राणवान जलवायु के होते हुए भी, कश्मीरी कविता में रोमानी कविता के प्रति साग्रह आकर्षण ने भी कल्पना की पेंगें उड़ानी आरम्भ कीं. वास्तव में रहस्यात्मक तथा रोमानी कविता की धाराएँ यहाँ पर समानान्तर रूप में बहने लगीं; और यही क्रम बराबर 1947 ई० तथा इसके परवर्ती कई वर्षों तक भी जारी रहा। लल्लेश्वरी ने अध्यात्म का शंख-नाद फूंका और हब्बा ख़ातून ने रोमानी कविता का जयघोष किया। कश्मीरी कविता के ये दोनों छोर इन नारी-विभूतियों द्वारा बड़ी ही मर्मस्पर्शी विदग्धता से अंकित किए गये हैं।

परन्तु जब सन् 1947 में भारत स्वतन्त्र हुआ और इसके साथ ही कश्मीर को डोगराशाही से मुक्ति मिली, तो सहृदय कवियों के सामने नये विषयों के दरवाज़े खुलने लगे। आतंक और भय का वातावरण पीछे छूट चुका था, परिणामतः अब कवि खुलकर बात कर सकता था; उसकी धड़कनों पर किसी भी प्रकार का अंकुश या दबाव न था जिससे उसकी कल्पना कुण्ठित-सी रह गई थी; इन नये आयामों को परिपुष्ट बनाने के लिए अब कवि का विषय मानव बना; इसके अभाव, न्यूनताएँ, कुण्ठा, घुटन, शोषण आदि इस कविता के पुरानी लीक से कटकर नये विषय बने; अब जीवन से जूझने की बारी थी, इसे झँझोड़ना था ताकि आज़ादी के बाद मानव-जीवन सार्थक और कल्याणकारी रूप धारण कर सके। वास्तव में इस प्रकार की काव्य-प्रवृत्ति आज़ादी के गीत लिखने वाले कविोंय

के लिए अपनी कल्पना आज़माने का दूसरा पड़ाव था। सम्प्रति राजनीतिक स्वतन्त्रता हासिल करने के बाद आर्थिक स्वतन्त्रता पाने के लिए मानव-मन को झटका देना अपेक्षणीय बन पाया था, और इस कर्तव्य को कश्मीरी कवियों ने बहुत ही प्रांजलता से पूरा किया।

यद्यपि 'महजूर' और विशेषकर 'आज़ाद' ने मानव के अभावों का रोना स्वतन्त्रता से पहले भी रोया था, परन्तु इस दिशा में आज़ादी के पश्चात ही प्रयोजनवान प्रयोग होने लगे, इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए 'कश्मीर कल्चरल फ्रंट' की देन अविस्मरणीय है, और इसी 'फ्रंट' ने असल में नये समाज की स्थापना के लिए भावभूमि सँजोनी शुरू की; इस 'फ्रंट' के साथ सम्बद्ध साहित्यकारों में श्री दीनानाथ 'नादिम' का नाम बहुत ही आदर से लिया जाता है।

विधि की विडम्बना से नादिम उर्दू-हिन्दी के घेरे से निकलकर कश्मीरी में आए हैं, इस माध्यम को अपनाने में नादिम की वह मनःप्रवृत्ति निहित है जो 'कश्मीरियत' की अनन्य भक्त है। देश की वाणी के प्रति उनका अडिग मोह है और इसी बहाने परोक्ष रूप में नादिम द्वारा कश्मीरी भाषा को एक कुशल शिल्पी की तरह सँवारे जाने के, जीवन्त बनाने के अवसर प्रदान किये गये; इतना ही नहीं, फारसी और संस्कृत के बोझिल शब्दों के स्थान पर ठेठ कश्मीरी मुहावरे का चलन होने लगा; कश्मीरी अब फारसी अथवा संस्कृत की उँगली पकड़कर हकलाने नहीं लगी, अपितु इसमें नैसर्गिक प्रवाह, मूलभूत निजी सौन्दर्य निखर आया; कश्मीरी कविता को सुसमृद्ध बनाने के अतिरिक्त इसके वाहन को सर्वग्राह्य और लोकप्रिय बनाने में उनका बड़ा हाथ रहा है। इस भाषा को वयस्क बनाने के लिए नादिम ने अथक परिश्रम किया है। नये विषयों की गरिमा का अनुमान इनके इस पद्य से स्वतः मिल जाता है—"गुलाब ने आँखें फेर दी हैं, सुंबलों ने अपनी पहचान खो दी है; यही गनीमत है कि नरगिस की उपेक्षित होते हुए भी आँखों में पानी बाकी है।" (हिन्दी-रूपान्तर)

इस पद्य में जिन प्रतीकों और बिम्बों का प्रयोग किया गया है उनसे साफ सामन्तशाही तथा दलितों के बीच खुलती दरार मुँह बाए खड़ी दिखाई देती है। इस प्रकार के नवीन प्रयोगों की व्यंजना नादिम द्वारा ही शुरू की गई, जिसका उनके समकालीन तथा उनके सम्पर्क में आने वाले युवक कवियों ने खुले दिल से स्वागत किया।

इसके साथ ही नादिम ने कश्मीरी कविता के गले पर से छन्दोबद्धता का जुआ उतार दिया; मुक्त छन्दों की शैली अपनाकर उन्होंने मन के भावों को बड़ी ही आज़ादी परन्तु सावधानी से व्यक्त किया; कविता के शिल्प में इस तरह का परिवर्तन लाकर जहाँ नादिम ने पारस्परिक विश्वासों से विद्रोह किया वहाँ

भाव-प्रकाशन में किसी भी प्रतिबन्ध को नहीं स्वीकारा। 'नव-पर और नव-स्वर'—निराला की इस सारगर्भित उक्ति के वे जीते-जागते प्रमाण हैं।

"यह कुन्द-लता ऊपर-नीचे तक बहुत ही नाजुक और पतली है, परन्तु इसके बीच में तेरे-मेरे की ऊँचाई उभर आई है। इस तरह मिठास कभी-कभी विष और विष कभी-कभी मिठास बन जाता है, जैसे शकुन्तला दबे पाँव मैके की ओर मुड़ रही हो।" (हिन्दी-रूपान्तर)।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि नादिम पर रूसी क्रान्ति का बहुत ही गहरा प्रभाव पड़ा है और उनकी साम्यवादी विचारधारा में अडिग आस्था है; परन्तु इस रंग में रँग कर भी उन्होंने स्वदेशी रंग को कभी भी फीका न होने दिया है; साम्यवाद से प्रेरणा लेकर भी उनकी कल्पना का ताना-बाना नितान्त स्वदेशी है; साम्यवादी आदर्शों के प्रति सजग होकर भी वह अपनी ज़मीन की सौंधी-सौंधी महक को भूल नहीं पाये हैं; यथार्थ का चित्रण करने में उन्होंने कश्मीर के प्रपातों का सरगम, हिमाच्छादित चोटियों का कुँवारापन तथा ऐसी प्राकृतिक भव्यता के बीच में पलती दरिद्रता को उपेक्षित नहीं रखा है। वास्तव में वे कश्मीर की नवीन चेतना के गायक हैं, नई भावभूमि के अग्रदूत और मानव की समता के उद्घोषक हैं—

मुझे आने वाले कल पर भरोसा है
कल के साथ ही मैंने वादा किया है।
उसकी गोद में गरदन रखकर
दिल की घुटन
खोलकर रख दूंगा।
अपने रुपहली छाती के दाग़
उसे ही भेंट कर दूंगा।
पूछूंगा कि क्या तुम
प्यार से मेरे घावों को सहलाओगे॥"

'नादिम' को आने वाले कल पर पूरा भरोसा है और वे बीते हुए कल की होली मनाने के लिए हर समय तैयार हैं; कल का मातम करने के बदले वे आने वाले का स्वागत करना ही श्रेयस्कर समझते हैं—

'क्या खोया' की भूल-भल्लियों में खो जाना उन्हें पसन्द नहीं। उनका 'क्या पाया' के प्रति सार्थक आग्रह है।

इस तरह नादिम ने नवीन संघर्ष की ज्वाला प्रदीप्त करके उसमें से उगते हुए प्रकाश को ही उपयोगिता प्रदान की, आग की भयावह प्रताड़ना को उपेक्षित रखा; यह ऐसा शुभ संकल्प था कि कश्मीरी कविता में प्रलय के बदले सृष्टि

का श्रीगणेश होने लगा; जो बीत गया सो बीत गया, अब तो नये समाज की स्थापना के लिए ईंट-पत्थर जुटाने का अवसर आ गया था जिसकी नाड़ी पर हाथ रखकर नादिम की कविता ने विनाश की विभीषिका से अधिक निर्माण का सोना बिखेरते हुए नव-प्रभात को नमन किया—

अनजाने में मकड़ी के जाले कट गये,
और चिनार के पीछे से अँधेरा
सरपट भागने लगा।
अचानक अपना डेरा उठाने के लिए
चमगादड़ हड़बड़ाकर
कहीं अँधेरे में
अपना बसेरा ढूँढ़ने लगा।

(हिन्दी रूपान्तर)

नादिम की कविता में अनुमान को वर्जित रखकर नितान्त अनुभूति का प्राबल्य है, अतः कविता के दो विशिष्ट गुण—समवेदना और सम्प्रेषणीयता सहज-सरल बन जाते हैं; नादिम ने इस अचूक संबल को कभी भी हाथ से जाने नहीं दिया है; यही कारण है कि उन्होंने आपबीती का माध्यम न अपना कर जगबीती को ही मुखरित किया है।

कश्मीर की मनमोहिनी प्रकृति से वे अछूते नहीं रह पाये हैं; इस दिशा में भी उन्होंने अतिरंजना को उपेक्षित रखकर यथार्थता का निर्देशन किया है; प्रकृति-चित्रण के व्याज से वे मानव की मनःस्थिति को उजागर करने में सफल हो पाये हैं; छायावादी अथवा रोमानी कवियों ने इसे मात्र पलायन और आत्म-प्रवंचना से कभी भी ऊपर उठाने का साहस नहीं दर्शाया है; नादिम आत्म-विभोर होकर भी प्रतिपल जागरूक हैं, पृथ्वी पर पाँव रखकर वे आकाश की बातें करने से कतराते हैं; वे इस धरती पर मानव के बिखरे-बिखरे सौन्दर्य को चाहते हैं और उसको पूर्णतः आत्मतुष्ट बनाने का प्रयत्न करते रहते हैं; उनकी कविता स्वान्तः सुखाय की अपेक्षा लोकहिताय का स्वर इसीलिए अधिक मुखर है; वे जनता की सहानुभूति अर्जित करने के साथ-साथ बदलते परिप्रेक्ष्य में जन-मानस का प्रतिनिधित्व करके मात्र मानव रह पाये हैं, देवता कदापि नहीं।

कुल मिलाकर नादिम की कविता जहाँ पारस्परिक विषयों में युगान्तर लायी वहाँ इसके प्रतिपादन में अभूतपूर्व मौलिकता दिखाई है; यद्यपि उनके इस नवीन प्रयोग से मोहित होकर कई अन्य कश्मीरी कवि भी इसी डगर पर चलने के प्रति लालायित हुए, परन्तु वे उनकी गरिमा को छूने में असमर्थ रहे; निदान वे इस लीक से हट गये। भीड़ में अब अकेले रहकर भी नादिम के स्वानुभूतिजन्य

उत्साह में कोई भी अन्तर नहीं आ पाया है । उसमें वैसी ही उष्णता और मौलिकता है, जैसी इसमें इसका श्रीगणेश करने के समय थी; सरसता इसीलिए उनकी कविता का सबसे बड़ा गुण है, अतः यह कदापि बासी नहीं हो पायी है; इसमें कश्मीर के प्रपातों का अनश्वर संगीत, नदी-नालों की न रुकने वाली गतिशीलता और अथाह जल-भण्डारों की गम्भीरता है तथा हमारी पर्वतमालाओं के शिखर पर रुपहली बर्फ की स्वच्छता, पवित्रता और चिर-नवीन कौमार्य समोया हुआ है ।

११६, नरसिंह गढ़ —क० न० द०
श्रीनगर

ध्वनि-प्रतिध्वनि

लक्ष्मीनारायण सप्रू
'मजबूर'
प्रमोद
'सुमन'
जयकिशोरी चौधरी
कमला पारिमू
क० न० द०

विहान

१. कौन अदृश्य हुआ कहां कौन छिप गया,
२. दौड़ते-दौड़ते मोच आई रात्रि-काल को,
३. लँगड़ाती-लँगड़ाती चलती रही तमिस्रा रात की,
४. किसी दिशा से फूटी इक किरण प्रकाश की,
५. रात्रि-देव सूख कर कांटा हुए मानो गये धँस,
६. मृता कलियों में फिर से होने लगा स्पंदन,
७. उल्लसित वायु के झोंकों ने ली पुनः सांस,
८. एक ही किरण ने मानो काले पृष्ठ को काट दिया,
९. अथवा गुलदख[1] परी का हाथ पहुँचा कोहे-क़ाफ़,
१०. 'बबरिकाठ'[2] के वक्ष तले होने लगीं धड़कनें,
११. तमिस्रा के वक्ष में पड़ा गर्त फूटा प्रकाश,
१२. किसी ने पी लिया इक सांस में 'कोलसर'[3]
१३. उधर चढ़ने लगा पर्वत पर कामदेव,
१४. आशाओं के शिथिलित अंग-अंग हुए स्फुरित,
१५. किस आशा से क्या पता ली अँगड़ाई भुजाओं ने,
१६. जिस पौधे की रात उन्नींदी उपजे उसमें पुष्प,
१७. पर्वत शृंग-पदांगुली रञ्जित, स्तन दूध से भर आये,
१८. दूर्वादल की संकुचित शिराएं गईं खुल,
१९. तमिस्रागारों के द्वारों के गये निकल आधार,
२०. शिथिल हुई किरण का कुछ-कुछ बँध गया ढाढ़स,
२१. कहीं कदाचित् कण-कण में हुआ प्राणों का संचार,

१. कश्मीर रूमानी साहित्य में अत्यन्त सुन्दर नायिका के लिए प्रयुक्त शब्द।
२. एक महकती झाड़ी।
३. एक सर जिसका पानी काले रंग का है।

२२. टिरौ-टिट्-टिट् चटकों की ची-ची गग्मू-गू
२३. यह पिच्-पिच्-पिच्, यह पी-पी-पी, पियो शोर,
२४. चटक-शावक नीड़ से निर्गत अन्वेषण करता चोगा ॥

उपाध्यक्ष
ज० क० राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
श्रीनगर

रूपान्तर
लक्ष्मीनारायण सप्रू

स्तुति

मैं बहुत देर से वहाँ पहुँचा
मेहमान खा-पी के चले गये हैं
जजमान परेशान हैं
अपने होंठ हिला रहे हैं
मैं जाकर एक तरफ को बैठ गया
लज्जा में उलझा
अपने हाथ धो लिये—
चौकी बिछा दी गई
मेरे सामने थाली आ गई
मैंने भगवान का नाम लेकर ढक्कन उठाया
उसमें तो कुछ भी नहीं
भूखा था जल्दी-जल्दी
मैंने उसका खालीपन चाट लिया
एक देग़ आ गई
थाली में एक करछी डाली
खालीपन की
एक रिकाबी आई
और मेरे हिस्से का खालीपन मुझको मिला
मैंने शून्य को अपने अन्दर जज़्ब किया
बारी-बारी जियाफ़तें मेरे सामने आ गईं
रंगारंग—
'शून्य—बस शून्य,'
लुक़मा-लुक़मा—मैंने खाया
'शून्य—बस शून्य'
खा-पीकर मैंने स्तुति की
देखो 'शून्य' कितना फैल गया है
बरसों बाद मैं तृप्त हो गया ।

पुकार

पंचाल से दौड़े-दौड़े हुए
पुरज़ोर पुकार—पुरशोर पुकार
नोकदार पत्थरों में से
हेमा के समुद्रों को पार करके
हेमा पर जख्मी तलवों के तेज़ निशान
रुई के गालों की तरह ताज़ा गुलाब खिल उठे
पुण्य किसने पाया
नीचे आये तो पुकारें बिखर गईं
जबरदस्त चीख-पुकार की तरह गुड़मुड़ हो गये
पंचाल के दामन में कुत्तों ने सुना
और भौंकने लगे
भौंकते भौंकते उन्होंने आसमान सर पर उठाया
बच्चों की एक टोली घरों से निकल आई
पुकारें आगे-आगे भागती जा रही हैं
और बच्चे उनके पीछे दौड़े जा रहे हैं
शोर उठाते हुए—
'मेरे प्यारे यह चढ़ावा है चढ़ावा'
तुम्हारे सर के ऊपर कौये मँडला रहे हैं
मानो यह भी एक सपना
पुण्य किसने पाया

नज़्म

मुस्कराते हुए उसने कहा—'अहंकार को छोड़ो'
सब कुछ रस्ते पर आयेगा।
पौ फटेगी और अँधेरा दूर हो जायेगा
ऊँह, ऊँह, ऊँह
क्या तुम्हें यकीन नहीं आ रहा है ?

मैंने होंठों पर ज़बान फेरते हुए सवाल किया
कैसे ?
यह तो सीधा-सादा हिसाब है
दो और दो चार हुए
मुझे इसमें सचाई नज़र आई
'दो और दो चार हुए।'
तब से अब तक काया पलटी—कितनी पलटी
पहले तो दो ही रहे
फिर एक—समन्दर कंकर से क्या भर जाये
आखिर मैंने खालिस 'शून्य' देखा
एक गोल 'शून्य'
कभी सिमटा और कभी फैलता हुआ
ऊँह, ऊँह, ऊँह, ऊँह
यह क्योंकर उलझ गया ?
यह तो सीधा-सादा हिसाब है
दो और दो भी शून्य बनता है।

खातिन

टन, टन, टन, टन घड़ी बज रही है
सू, सू, सू, सू ख़ून रगों में दौड़ रहा है।
लाले कतार बाँधे खिल उठे हैं।
हवा रंगीन हो गई है, फूलों के रंग अपने अन्दर
जंगल में से नाले के आहिस्ता बहने की सदा आ रही है
राम चिड़िया ऐसे दौड़ रही है जैसे शोला भड़क उठा हो
इधर से दूसरे रंगीन परिन्दों की उड़ान
महसूम से पैर, टिक, टिक, टिक, टिक
अनारी रंग के कपड़े वहाँ से यहाँ
आपस में कुछ लड़ना-भिड़ना
एक-एक बच्चा तेज और नाचता हुआ शोला है
यह मित्रो—कुछ कह रहा है
एक-एक बुज़ुर्ग—मौत को पाने की
मुझे धीरे-धीरे कुछ याद आ रहा है
के नजदीक पाँव के कुछ आकार

जो खून में नहाये हैं।
खातिन अमर है—इन्सानियत का निशान
एक दिन जब मुहब्बत भरे सीने में छेद हुए
मुझे याद आ रहा, याद आ रहा है मुझे
खातिन अमर है, मेरा सर अदब से झुक जाता है।

नज़्म

शीत लहर का पैर था भारी
हू, हू, हू दौड़ रही है
हर तरफ बखेरती जा रही है
नमक की तरह सफेद रेत के ज़र्रे
एक तह के बाद दूसरी तह
एक नसल के बाद दूसरी नसल
एक जगह करके, सजा-धजा के
रास्ता कहीं नज़र नहीं आता
पीछे मुड़के देख
नियान-नक्श
पीछे मुड़ के देख
क्या कहीं कुछ नज़र आ रहा है ?
समय की गर्दिश
हर नक्शे को मिटा चुकी है।
पीछे की तरफ देखो—सहरा है
और आगे—रेत का ठेला
ऊपर से धुंध छाई हुई है
लगता है कि धुआं नीचे से उठ रहा है
मेरी जान तो सिकुड़ गई है
सिकुड़ती चली जा
और भी सिकुड़ और सिकुड़ती ही जा
अब इंतिज़ार करेगी
और इंतिजार करके तुम सर से बाझ उतार नहीं पाओगी
तुम्हारी पीठ पर भारी भरकम बोझ
चिथड़े पहने दीवाने
क्या यहीं कहीं हम

तुम हथकड़ियों के दीवाने हो
धूप को लज्जा आई है
तुम्हारा रंग फीका पड़ गया है
नदी का पानी कब का सिदक चुका है
वहाँ अब रस्ता बन गया है
क्या कहीं कोई अता-पता है
कोई आकार या नक़्श है
जो तुझे पहचान ले
तुम्हें इंतिज़ार करना है
इंतिज़ार कर
वक्त की शीत लहर आ रही है
अभी-अभी तुझे दफन कर देगी
लमहे भर के लिए यह तुम्हारे नाम की रट लगायेंगे
और फिर किसी को कोई फिक्र नहीं
फिर एक तह के ऊपर दूसरी तह
एक पीढ़ी के बाद दूसरी पीढ़ी !!

—अर्जुनदेव 'मजबूर'

द्वारा रेडियो कश्मीर
श्रीनगर

जंगल

यकायक मैंने महसूस किया यूँ
हवा में सिलवटें-सी पड़ गई हैं
सनुबर के पत्तों की सनसनाहट
मेरे कानों से टकराने लगी है
यह देखो, साज़ के भी तार जागे
"आ भी जा, आ—आ भी जा"
झर झर—झर
तेलबल की हवायें गा रही हैं
शीहो—हो
आ भी जा—आ—आ भी जा
जैसे मैंने प्रश्न पूछा
कहाँ जाने का सन्देशा है
और उसने—
गाना शुरू किया
और मैं बोल उठा
का समय भी बीत गया
उसने गाना शुरू किया
'ऐ क्या तू थर-थर काँप रहा है
जैसे मैंने उससे कहा—
"तुम्हारे शौक में कमी आ गई है"
वह बोल उठा—
"हर चेहरा तुम्हारी मंजिल है"
और फिर गाने लगा
"टन-टन-टन"
"आ भी जा—आ—आ भी जा"
"आ भी जा—आ—आ भी जा"

जीवन-दर्पण

जीवन-दर्पण धुँधला-धुँधला
धूल में धीरे साँस ले रहा है
सोच की नज़रें ठण्डी पड़ चुकी हैं
मगर बसंत का दिन अभी नरम है
सच और झूठ साझेदार से बन गये हैं
न हमें सर नजर आता है और न पैर
हमारे शौक का दामन गीला हो गया है
हम कंगाल बहारों का दामन थामे बैठे हैं
धागों को अलग-अलग पकड़ कर
मैंने ही सब कुछ उलझा दिया है
यहाँ एक धागा हाथ से छूट जाता है
और वहाँ मेरी अक़्लमन्दी उलझ के रह गई
अपना शौक ही क्या निकला
हमने इशारों के सहारे ही लम्हे बिताये
बावलापन—सच्चा हो—सच्च है
हवस फाँसी पर कब लटकी है
आगे बढ़ना था, बढ़ गये
मगर अब मुश्किल है
शौक थकान से चूर हो जाता है
जब इन्तजार लम्बा हो जाये
फिर जीवन का यह दर्पण
अगर परदों के अन्दर रखा गया
तुम कभी उनका चेहरा देख नहीं पाओगे
और न ही बारीकियाँ समझ सकोगे ?

रूपान्तर
प्रमोद

आधी खामोशी

मैं उठ नहीं सका—किसी तरह से
एक दिन
मैंने भी सीढ़ी को खड़ा किया
....
....
....
पहुँच गया मैं
चुन-चुन के तारे ले आया
....
....
....
उसे पसंद नहीं आये और मैंने बिखेर दिये
....
....
कुछ भी सही
उसके बाद
....
....
....
मैंने अपने होंठों को सी डाला

घास का तिनका

घास का तिनका
हल के नीचे से सर उठा के निकला है
अनजाने में आज ही उसने जीवन पाया
कन्धों पर भारी बोझ लिये है मासूम
जीने की अभिलाषा कितनी इस में

हवा और ओले उसकी किस्मत
नाले का चढ़ता पानी—
इसकी जड़ से टकरायेगा
किसी पत्थर की ज़द में आकर मुर्झायेगा
पानी की एक तेज़ लहर
उसको उखाड़ के ले जायेगी
कहीं किसी जगह किनारे लग जायेगा
कही किसी जोहड़ में उसके पाँव जम जायेंगे
किसी बंद जार में दम लेगा
कोई कठफोड़ा उसे पार उतारेगा
और उसकी रगों में जान आ जायेगी।

नज़्म

धीमा-धीमा, हल्का-हल्का
यह दर्द ही ऐसा पाया है
इस दरद का कोई अन्त नहीं
गरमा, खँजान, सरमा या वसन्त
इस दरद का कोई अन्त नहीं
बस बिच्छु का एक डंक
कन्धों पर ठोंकी गई एक कील
दम घुटने की हालत जैसी
प्राणों को एक झटका—
अंग-अंग में थरथराहट
बाज़ू फड़क रहे हैं
पारा फैलता जा रहा है
सर से पैर तक पसीने से शराबोर
दिल जोर से धड़क रहा है
वसन्त में किसी देव ने जैसे चोंच से कुरेदा है
उस दरद का कोई अन्त नहीं !!
धीमा-धीमा, हल्का-हल्का
यह दरद ऐसा पाया है
इस दरद का कोई अन्त नहीं
इस पहाड़ का सीना एक सिरे से उस सिरे तक उभरा हुआ है

इंसानों का दर्द लिए—
रग-रग इस दरद में डूबी है
जख्मी फूल हर जगह कतार बाँधे खड़े हैं
इस दरद का कोई अन्त नहीं
धीमा-धीमा, हल्का-हल्का
यह दरद ही ऐसा पाया है
इस दरद का कोई अन्त नहीं
घना जंगल, दिल मीलों उछलता है
इसके आगे न कोई झाड़ी है और न इन्सान
रौशनी भी काली है
और रोती बिसूरती है
प्राचीन काल के जख्म चमक रहे हैं
आजकल यहाँ से बारूद बहता है—
हाथों के सहारे चलते मुझे धोखा हो रहा है

महिला महाविद्यालय
सत्थू, बरबरशाह
श्रीनगर

रूपान्तर
सोमनाथ 'सुमन'

सवेरा उग आया

(१)

काले मोटे कम्बल-सी रात निस्पन्द है
मौत जीवन में सेंध लगाकर श्मशान ले गई
अचानक कोई चीज औंधें मुँह धराशायी

(२)

अँधेरे को न जाने किस ने झटका
देकर उसमें कँपकँपी पैदा की
पेड़ों से आने वाली सरस पवन विदा हो गई
इनका आस-पास उफन उठा।

(३)

दूसरी ओर रात के साये लज्जित हो उठे
अनजाने में मकड़ी के जाले कटकर गिर पड़े
उसी क्षण चिनार की ओट अँधेरे में भगदड़ मच गई
और अनजाने में दबे पाँव, हड़बड़ाहट में
चमगादड़ ने लंगर उठाने की तैयारी की।।

रूपान्तर
मोतीलाल

(श्री साक़ी महोदय द्वारा प्रेषित)

गुलि-लाला[1]

(१)

वही गुलि-लाला फूल का रंग आँक सकता है
जिसे आँखें मिल पाई हों
परन्तु उसकी घुटन पर किसने ध्यान दिया ?
प्रातः किरण से शायद कोई अपराध हुआ
जब इसने ये कलियाँ अपने गले में पिरो दीं ।

(२)

वसन्त से पहले ही फूलों की तलाश कैसे की गई
वे सम्भवतः कहीं दावत खाने चले गये हों
कलाल ने हमारी बातें लुक-छिप कर सुन लीं,
जभी तो एक प्याले ने दूसरे की ओर झाँका

(३)

शाम के साये और बिजली दोनों
इतरा से गये
इसी कारण यह अधमुआ दिल जाल की
तरफ हो लिया
सब तो समतल भूमि का भ्रमण करते हैं
परन्तु नादिम पर्वत की ओर पीठ मोड़े बैठा है ।

('गाशिरी' से)

रूपान्तर
जयकिशोर चौधरी

१. कश्मीर का एक स्वदेशी लाल फूल जो प्रायः वसन्त से कुछ पहले वीरानों में उगने लगता है ।

आने वाला कल

(१)

मुझे आने वाले कल पर भरोसा है
इसी कल के लिए तो उससे करार हो चुका है ।
मैं ढलते दिन सा लताओं के पीछे से
उसकी बाट जोहता रहूँगा
हीमाल[1] की तरह उसके प्रेम और ममता
की प्रतीक्षा करता जाऊँगा
यदि उसे देर भी लगे तो हताश न होकर निरन्तर इंतिजार में रहूँगा ।
इसी कल के लिए तो उससे करार हो चुका है ।।

(२)

जब वह प्रेम-दिवाना अपने तिरछे
साये बिखेरता आयेगा ।
मैं उस समय उसे माला पहनाने के लिये फूल चुनता हूँगा
वह बतियाने लगेगा तो मैं ऐंठ जाऊँगा ।
तब इशारों की धूम मच जायेगी ।
इसी कल के लिये तो उससे करार हो चुका है ।

(३)

उसकी गोद में सिर रखकर मैं
दिल के घाव उसे दिखाऊँगा ।
और अपनी रुपहली छाती के दाग़
उसे भेंट कर दूँगा
पूछूँगा कि तुमने मुझे क्यों प्रेम की जलन में झुलसाया ।
कल के लिये ही तो उस से करार हो चुका है ।

रूपान्तर

(अज़िच काशर शायरी से) **कमला पारिमू**

१. प्राचीन कश्मीर की एक परित्यक्ता जो अनन्य प्रेम की प्रतीक मानी जाती है; 'नागराय' के साथ इस नायिका का प्रेम चिर विख्यात है ।

चोरी

मुझे किसी ने चोरी की
व्यर्थ ही मैं बहुरंगी तितली ढूंढ़ने वाड़ी में गया
आज तक मुझे रंग-बिरंगे सायों ने आँख-मिचौली
कर के ललचाया
रात-दिन गुज़ार कर मैं समझा मैंने इसे पा लिया
किसी ने इसे पत्थर मारे तो यह मुझसे उल्टे
पाँव छूट गया
हल्की धूप, वसन्त और शरद के रंग
गर्मियों में तैरना, न बर्फ को शर्त[1] लगाना
हँसता हुआ चाव, क्षीण होता हुआ स्नेह ।
इन सब को यह चोर ढोकर ले गया
अब मेरे पास क्या बाक़ी रहा
एक टूटी-फूटी काँगड़ी
जिसके अन्दर बर्फ की एक ढल्ली
रखी गई है ।।

क० न० द०

१. कब बर्फ गिरेगी इसके लिए कश्मीरी प्रायः शर्त लगाते हैं ।

इन्द्र-धनुष

काशीनाथ रिव्यू
प्रमोद
लक्ष्मीनारायण सप्रू
पुष्कर
क० न० द०

स्व० स्वामी गोविन्द कौल

कश्मीर की सुन्दर और पावन धरती ने केवल संस्कृत, फारसी आदि भाषाओं के कवियों को ही नहीं जन्माया है, अपितु इस देश की मौलिक भाषा यानी कश्मीरी में भी ऐसे प्रातः स्मरणीय दिग्गज पण्डित और कवि हुए हैं जिन्होंने इस साहित्य को समय-समय पर पनपाया है और चार चाँद लगाये हैं।

यदि हम कश्मीरी कविता साहित्य का सम्यग् अध्ययन करें तो झट लल-द्येद, परमानन्द, हब्बा खातून, कृष्ण राजदान, रुसुल मीर, वाहबखार, शमज फकीर आदि कवियों और कवयित्रियों के नाम और इनकी रचनाएँ हम मुक्तकण्ठ से गाते रहते हैं। इसी परम्परा को आगे लेने के लिए महजूर ने कोई कसर बाकी नहीं रखी है, हाँ इन्हीं के समकालीन कृष्णभक्ति परम्परा के कवि स्व० स्वामी गोविन्द कौल का स्थान भी आता है। इन्होंने कृष्ण राजदान से प्रारोपित भक्ति के विशाल और विमल वृक्ष को एक सुचारु ढंग से पल्लवित और पुष्पित किया है जिसके तले बैठकर एक पाठक ग्रीष्म ऋतु में झीनी-झीनी और शीतल पवन झकोरों का अनुभव अवश्य करता है।

स्वामी जी की जन्मभूमि

कश्मीर की सुन्दर और कोमल गोद काज़ीगुण्ड के पास 'वनपुह' गाऊ में आपका जन्म हुआ है। इस वात्सल्यपूर्ण गोद में कश्मीरी भाषा के सूरदास स्व० कृष्ण राज़दान जन्मे थे। अतः गोविन्दजी को घर पर ही वह आध्यात्मिक खाद्य मिल गया था जिसकी पृष्ठभूमि पर इनकी स्फटिक की तरह शुद्ध संकल्प-सरिता उमड़े बगैर न रही और विविध जनजाति के मानसिक क्षेत्रों को सिंचित करती रही जिसके फलस्वरूप इनके असंख्य भक्त और अनुयायी बन गये। इनकी कविताओं और गीतियों का डंका यत्र-तत्र बजने लगा।

ये दत्तात्रेय गोत्र से उत्पन्न कौल जाति से विभूषित थे। इनके पिता का नाम अखताब जू था। माता विश्वमाली ने इनको प्रिय नाम गोविन्द दिया था। इनके गुरु का नाम भरतलाल था जिनकी छत्रछाया में बैठकर समय-समय पर इनको यथेष्ट ज्ञानामृत मिलता ही गया, इसी अमृत के आस्वादन से इनकी योगभूमि सुदृढ़ बनती गई। कालयापन के साथ-साथ इनके मुख पर ब्रह्मतेज की छटा ऐसे ही छा गई जिस प्रकार सरसिज पर लालिमा। ये अन्य सन्तों की तरह जंगलों की

गुफाओं में बैठकर तपस्या करने के ह्रामी नहीं थे। अपने घर पर रहकर एक साधारण किसान की भाँति सब कामकाज करते थे। श्रीकृष्ण की भाँति अपने-अपने गोधन को चराते थे, यथायोग्य सेवा-टहल भी करते थे।

गोविन्दजी का व्यक्तित्व

ये स्वभाव के शीतल, मितभाषी, दुखियों की सहायता करने वाले अनुपम संत थे। ये एक लम्बा कश्मीरी 'फिरन' धारण करते थे। प्राय: इनके हाथ में छोटी सोटी रहती थी। अनुशासन, विनय और गम्भीरता इनके स्वभाव की विशेषताएँ थीं। इनके कपड़े साफ-सुथरे हल्के-फुल्के रंग के बर्फ के समान निर्मल और कोमल शरीर पर बहुत ही शोभा पाते थे। स्वामीजी के मुख पर तनिक भी अप्रसन्नता नहीं थी। मुस्कान के समय इनकी दन्तावली विद्युल्लेखा-सी कौंधती थी।

ये शान्ति की जीती-जागती प्रतिमा थे। इनके पास बैठकर सत्संगति के ज्ञानमय भण्डार श्रोतागणों को आनन्दविभोर करते थे।

जनसाधारण के अतिरिक्त विशेष पुरुषों पर इनका प्रभाव

गोविन्दजी जन-जन के मन को मोहित करने वाले चुम्बक थे जो अपनी ईश्वरीय शक्ति से माया-मलिन लोहे के समान मनों को कंचन बनाते थे। इनके विषय में डा० मेडार्ड बॉस निर्दिष्ट विचार प्रकट करते हैं।

"I met a great many very learned and saintly Indian men and women. To all of them I shall remains deeply indebted for their help. The turning point of my life, however, occured when I was brought before Swami Gobind Kaul who had come down from Kashmir."

Medard Boss M.D.
Professor of Psychotherapy
Medical School University of
Zurich, Switzerland.

भारत के बहुत भागों से बहुत से विद्वान्, ज्ञानी दार्शनिक और नेता लोग इनके उपदेश की दाद लेते थे। ये जात-पाँत के भेदभाव से परे थे। इनके पास भिन्न-भिन्न धर्मों के लोगों का ताँता बँधा रहता था। श्री भास्कर नाथजी रैणा कश्मीरी इनके विशेष भक्त थे। उन्होंने इनका कविता साहित्य छापने का बीड़ा अपने कन्धों पर लिया था और कविता संग्रह को छपवाकर 'गोविन्द-अमृत' नाम रखा। इसमें गोविन्दजी की लगभग २७५ कविताएँ उपलब्ध होती हैं।

हाँ, मम्मटाचार्य ने ठीक कहा है, "अपारे काव्यसंसारे कविरेकः प्रजापतिः" कवि काव्य के संसार में ब्रह्मा का स्थान रखते हैं। जिस रंग या रस में संसार को रूप देना चाहता हो, दे सकता है, ठीक संत गोविन्दजी एक कवि के रूप में यशः शरीर से हमारे सामने जीती-जागती प्रतिमा है। उनकी कविताएँ पढ़-पढ़ कर आजकल मन्दिरों में साप्ताहिक महिला गोष्ठियों का आयोजन होता है। जहाँ इनके कश्मीरी भजनों की व्याख्या होती है और इनको लय और ताल में गाया जाता है। इस प्रकार गोविन्द-अमृत का आस्वादन होता है।

गोविन्दजी का कृष्ण

इन्होंने कृष्णजी को गोविन्द शब्द से ही ललकारा है। इनको सारी दुनिया यहाँ तक स्वत्व भी गोविन्द लगता है। तादात्मिकता, समर्पण और एकनिष्ठता इनको गोविन्द में ही परिलक्षित होती हैं। कृष्णजी जब वृन्दावन में गायों को चराते थे और मुरली बजाते थे, वह झाँकी इनको बहुत ही सुन्दर लगती थी। अपना गाऊ 'वनपोह' इनका एक छोटा-सा वृन्दावन था। गायें चराना इनकी दिन-चर्या थी। गाऊ के समान वयस्क इनके साथ खेलने वाले गोप और गोपियाँ थीं। लहलहाते खेत और मेवेदार वृक्ष इनके निकुंज, यही वे अपने गोविन्द धाम को देखकर गोविन्द में झूमते और ठाठें मार-मारकर रमते जाते थे। यह तथ्य इनकी इस कविता भाग से सुदृढ़ होता है—

(कश्मीरी) "वाह-वाह यारो वछुम ब्यन्दस मन्जई स्यन्द बसिथ
प्रथ तन्य मनि सनि योगनि हनि-हनि गोविन्द बसिथ"

अर्थ—मैंने बिन्दु में समुद्र देखा, जो समुद्र गोविन्द का नाम है, योगियों के मनोमन्दिर में धीरे-धीरे यही समुद्र ठाठें मारता है।

(कश्मीरी) "अन्दर चइ न्यबर चई हवा जेर जबर चई, रोज मा बेखबर चइ
चइ छुख चई छुख चइ खुखचइ म्य छम गोविन्दन्य द्रय"

अर्थ—गोविन्द सर्वव्यापी है, इसके बिना संसार का विकार या अविकार करने वाला कौन हो सकता है। मुझे गोविन्द की सौगन्ध है कि मैं सच कहता हूँ।

गोविन्दजी ऐसे विलासियों को दुत्कारते हैं, जो बाहर से बेर फल के समान रंगीन दिखाई देते हैं, अन्दर से कड़वे। मुख से बोलने पर ऐसे लोगों की ठाट-बाट उतर जाती है। कवि का विचार इन पंक्तियों में अभिव्यक्त होता है।

(कश्मीरी) "दय नो वछान याले चाले, वछान छु अद्रि मि रायेकुन
दय नो वछान अथबुथ छलनस, वछान सु मनिदुय चलनए कुन"

अर्थ—केवल बाहर से स्नान करने का क्या लाभ जबकि मन का स्नान करके द्वत्व न मिटाया जाए। प्रभु आन्तरिक महत्त्व पर सन्तुष्ट रहते हैं।

यद्यपि गोविन्दजी अर्धपठित थे फिर भी शक्ति की उपासना से विशेषकर

सरस्वती की उन पर बड़ी अनुकम्पा हुई थी जिसके फलस्वरूप उनकी वैखरी ऐसी ही फूटी थी जैसे कोंपले से फूल। यही कारण है, इनकी रवानी कहीं टूटती नहीं।

(कश्मीरी) याज ग्ववुन ह्यतुम सरस्वती आये स्यूतीय
दय दयायि स्यूतिय गुरु कृपायि स्यूतिय।
गवनो लोक कथे गोविन्द खुत रथे
सोरुय आस अथे चानि माये स्यूतिय।

गोविन्द को सब कमी सरस्वती की दया से पूरी हो गई जिसमें गुरु का बड़ा योगदान रहा, लोगों की बातों पर उनका विश्वास न रहा।

इसी प्रकार श्रीराम के महिमा-स्रोत में इन्होंने अवश्य डुबकी लगाई है, जैसे—

"गोविन्दन वुछ सुय जायि जाये
मनि गंड छिजि च्यजि शंकाये
परम सुख शेव म्यूल परम धामो
सच्चित् आनन्द कन्द श्री रामो।"

गोविन्द ने सर्वत्र चित् शक्ति से राम के परम सुख को प्राप्त करके माया की छूट प्राप्त कर ली और मन पर नियन्त्रण कर लिया।

यहाँ तक प्राणाभ्यास करते हुए गोविन्दजी ने 'सोऽहम्' में गोविन्द का ही अनुभव किया है यहाँ पर ससीम गोविन्दजी उस असीम कृष्ण के साथ कैसे अद्वैत दिखाते हैं और मनोहर शब्दों में निर्दिष्ट पंक्तियाँ गुनगुनाते हैं—

(कश्मीरी) "सत् चित् आनन्द गोविन्दगो प्राण छिम करान सोऽहं सू
गोविन्द सुरतो गोविन्द गूं।"

मेरे प्राणों के श्वासोश्वास में गोविन्द रमा हुआ है, अतः मुझे गोविन्द का नाम-स्मरण करना अच्छा लगता है।

गोविन्द का कृष्ण एक शरीरधारी मानव नहीं अपितु परब्रह्म परमात्मा है। वे ओंकार में भी कृष्ण का रूप देखते हैं, जैसे—

"अस्य शरणे पूजा करने जानिथ ओंकार छिय।"

आपको ही ओंकार मानकर हम पूजा करने के लिए आये हैं।

भला हम इस गोविन्द को कैसे पा सकते हैं? इसके उत्तर में गोविन्द जी कहते हैं कि एक भक्त संसार में रहकर भी माया में आसक्त न हो, वह ऐसे ही रहे जैसे कमल का पत्ता पानी में, जैसे—

(कश्मीरी) "जलस मंज पम्पोश बसिथ जगतस मंज सन्त,
निर्लेप छुय गोविन्द जानि मा सु असन्त"

सन्त अथवा भक्त संसार में पुषकर पलाश के समान रहे पानी में रहकर

भी वह भीगता नहीं है, ठीक, भक्त माया-मोह के साथ लिप्त न रहे।

ऐसी ही अवस्था में गोविन्द धाम का अनुभव होता है। छाया के ससीम पर्यावरण से निकलकर कवि असीम रहस्य में गोता लगाने के लिए बड़े लालायित दिखाई देते हैं, जैसे—

"तन दिमहा, मन दिमहा धन दिमहा सोरय
मेलि ना मु-अल लोलह सोदा बाजारस वन्यतवे
गोविन्द छुय इन्तिज़ारस बालह यारस वन्यतवे"

तन, मन, धन सब कुछ प्रियतम के मिलन के लिए न्यौछावर करना चाहते हैं। एक ग्राहक बनकर कृष्ण का सौदा माँगते हैं। गोविन्दजी पर शैवमत की गहरी छाप पड़ी है जो इनके भजनों से प्रमाणित होता है, जैसे—

"शिव-अ लगयो शेव नांवस शंकर शुल्ह सुन्दरो
पूर्णब्रह्म परमेश्वर शंकर शल्क सुन्दरो"

इसी प्रकार शक्ति का भी गुणगान किया है। दोनों शिव और शक्ति के उदय से संसार का उदय हुआ है। चिद् शक्ति के प्रकाशित होने पर ही एक मानव विभिन्न समस्याओं को सुलझा सकता है। ऐसी ही गोविन्दजी की अनुमति है।

कवि ने अपनी कविताओं एवं भजनों में फारसी शब्दों को भी यथेष्ट स्थान दिया है, जिससे इनकी कविताएँ लोकप्रिय हो गई हैं।

मेरे मतानुसार गोविन्द ने कश्मीरी कविता साहित्य में भक्ति का ऐसा रंग चढ़ाया है जिससे यह कविता आध्यात्मिकता की मनोहर वेदी पर चढ़कर ऐसा निर्झर बहाती है जिसका मधुर जल पी-पीकर सहृदयगण रसविभोर हो जाते हैं। कलापक्ष के दृष्टिकोण से इनकी कला माधुर्य गुणों से ओत-प्रोत, ललितात्मिक रचनाओं से रँगी हुई इन्द्रचाप की कमान-सी दिखाई देती है जो टेढ़ी-मेढ़ी होकर भावपक्ष की ओर जाने वाली पौढ़ी है। अन्ततोगत्वा इनके कलापक्ष का समावेश भावपक्ष में होता है जिससे इनका कविता साहित्य अमर बन गया है। गोविन्दजी पाँच भौतिक से पृथक् हो गये किन्तु आध्यात्मिक रूप से और कवि प्रतिभा से भक्तों की तन्त्री का मधुर संगीत हैं। जिसका तार मानसिक सुख का मात्र सार है।

कश्मीर को ऐसे महापुरुषों पर बड़ा गर्व है जिन्होंने समय-समय पर अपने ज्ञानचक्षुओं से किसी भेदभाव से रहित इस देश को ज्ञानामृत से आप्लावित किया है, जिसके आचमन से हम अन्तःकरण को शुद्ध कर सकते हैं।

श्री परमानन्द शोध संस्थान —काशीनाथ रिव्यू
श्रीनगर

पण्डित साहिबराम

पण्डित साहिबराम का जन्म श्रीनगर में अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ था। ऐसा कहा जाता है कि उनके पूर्वज अनन्तनाग से आकर श्रीनगर में वृत्ति हेतु रहने लगे थे। पं० साहिबराम कौल के पितृ महोदय 'श्री दिल्लाराम' भीरुं परगने में कारदार पदवी पर नियुक्त हुए थे जो उत्तरदायित्व उन्होंने बहुत ही जिम्मेदारी से निभाया। यातायात की सुविधा न होने के कारण वे भीरुवा में अकेले रहने लगे और उनके सुपुत्र साहिबराम की शिक्षा का भार उनकी माता ने अपने पति की अनुपस्थिति में बहुत योग्यता से पूरा किया। बचपन में उन्हें पहले मकतब में फारसी भाषा की शिक्षा पाने के लिए भेज दिया गया। ये उस समय का चलन था। परन्तु १८ वर्ष की आयु प्राप्त करने पर भी उनका मन इस शिक्षा में नहीं लगा क्योंकि उनकी तीव्र उत्कण्ठा थी कि वे संस्कृत लिखना-पढ़ना सीखे।

परन्तु संस्कृत शिक्षा का उन दिनों कोई सुव्यवस्थित प्रबन्ध नहीं था। संस्कृत के प्रवर पण्डितों के पास उनके घर पर ही जाकर इस भाषा का पठन-पाठन सम्भव था। ऐसे प्रज्ञावान् संस्कृत विद्वान की खोज में वे गाओं से गाओं घूमते गये, अन्ततः उन्हें राजानक 'लसकाक' से संस्कृत शिक्षा-दीक्षा प्राप्त हुई। पूर्व संस्कारों के आधार पर उन्हें इस भाषा का सम्पूर्ण ज्ञान बहुत जल्दी प्राप्त हुआ और वह शैव दर्शन के ग्रन्थों को पढ़ने और समझने के योग्य बन गये। 'लसकाक' द्वारा शिक्षा पाने के पश्चात् वे श्रीनगर में स्वतन्त्र रूप में संस्कृत पढ़ाने लगे और इसके लिए उन्हें अच्छी-खासी आय भी प्राप्त होने लगी। तत्पश्चात् वे पुराणी संस्कृत पाण्डुलिपियों का संग्रह तैयार करने में लग गये।

बाद में वे कथावाचक के रूप में माघ मास में श्रीमद्भागवत के बारह स्कन्दों पर व्याख्यान करते रहे, तत्पश्चात उन्होंने शिव पुराण का भी इसी तरह वाचन-वादन किया।

धीरे-धीरे उनकी ख्याति राज-दरबार में पहुँचने लगी और महाराजा रणवीर सिंह ने उन्हें राज-सभा को कवि पदवी से विभूषित किया।

परन्तु वास्तव में उनकी ख्याति राजतरंगिणी के सम्बन्ध में विशाल ज्ञान पर आधारित है जिसकी भूरि-भूरि प्रशंसा 'डा० स्टीम' ने कल्हण कृत राजतरंगिणी का सम्पादन करते समय की है। उनके इस सहयोग का विस्तृत

विवरण देते हुए डा० महोदय का कथन है कि यदि उन्हें साहिबराम का मार्ग-दर्शन प्राप्त न हुआ होता तो उनकी राजतरंगिणी उतनी उपयोगी सिद्ध नहीं होती। साहिबराम जी के निधन की कोई निश्चित तिथि अप्राप्य है। उनकी कुछ रचनाओं के नाम ये हैं :

१. राजतरंगिणी-संग्रह; २. तीर्थ-संग्रह; ३. नीति-कल्पलता (भागवत् पर-आश्रित); ४. गोत्र प्रवराध्याय-व्याख्या; ५. गीता-व्याख्या (साहिबी); ६. पंचसायक विवरणम् आदि-आदि।

—प्रमोद

स्व० ईश्वर कौल

श्रीनगर में पाँचवें पुल के समीप ही ऋषि-पीर-साधु-सन्त की समाधि है। तदर्थ यह सारी बस्ती ऋषि-पीर नामक मुहल्ले से विख्यात है। इसी पुण्यस्थली में स्वर्गीय ईश्वर कौल का जन्म सर जार्ज ग्रियर्सन के मतानुसार १८६० ईस्वी में हुआ था और उनका निधन इसी साक्षी के आधार पर १८८४ ईस्वी में हुआ। वह बाल्यावस्था से ही बड़े कुशाग्र बुद्धि और प्रत्युत्पन्नमति थे।

जब ईश्वर कौल दस वर्ष के थे तो उनके पिता गणेश कौल स्वर्ग को सिधारे, और माता तीन वर्ष पश्चात् अमरता को प्राप्त हुईं, अतः १३ वर्ष की आयु में ईश्वर कौल अनाथ हो गये। इनके बाद भाई ने इन्हें आश्रय दिया, पढ़ाया और लिखाया। कालोपरान्त ईश्वर कौल संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित बन गये और अपनी बड़ी भाभी के सौजन्य से उन्हें एक योग्य पत्नी मिल गई। उनके कुलगुरु कपिल भट्ट यक्ष ने उन्हें बहुत लग्न से कर्मकाण्ड आदि में बहुत ही प्रवीण बना दिया। उन्होंने संस्कृत की कई प्रसिद्ध कृतियों पर भाष्य भी लिखे और ज्योतिष विद्या में भी पारंगत हो गये। आंग्ल-भाषा को भी उन्होंने लग्न से सीखा। वास्तव में उनकी अमर रचना कश्मीरी भाषा का पहला मौलिक व्याकरण है। इस अभूतपूर्व प्रयास से उनका नाम कश्मीरी साहित्य में एक मील-पत्थर का स्थान रखता है। यद्यपि इस व्याकरण में संस्कृत शब्दों की बहुलता है परन्तु इसमें व्याकरणकार का दोष नहीं अपितु कश्मीरी का संस्कृत पर आधारित मूल स्रोत है। इस अभूतपूर्व रचना की सर जार्ज ग्रियर्सन ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

इस व्याकरण के मूलभूत महत्त्व को ध्यान में रखते हुए कलकत्ता में स्थित रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ने इसका पहला संस्करण तैयार करवाया और मुद्रित करके प्रकाशित भी किया। इसे सँवारने हेतु ईश्वर कौल महोदय को स्वयं कलकत्ता जाना पड़ा।

उनके चार पुत्र थे। जिनके नाम क्रमशः—आनन्द कौल, रामचन्द्र कौल, ताराचन्द कौल और हरिश्चन्द्र कौल थे, जिनकी सन्तति अब दिल्ली में स्थायी रूप से रहने लगी है।

—प्रमोद

पण्डित महेश्वर राजानक

श्रीनगर के हब्बाकदल मोहल्ले में राजानकों का प्रतिष्ठित कुल निवास करता था। इस कुल के चूड़ामणि थे श्री मुकुन्द राजानक। इनके ही पुत्र-रत्न पं० महेश्वर राजानक का जन्म १८८४ ई० में हुआ। ये शैवशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित तथा मर्मज्ञ थे। अपने समय के ये जाने-माने महापण्डित थे। स्वभाव से ही ये सौम्य प्रकृति के थे और सहृदयों के हृदयाह्लादक थे। ये कर्मकाण्ड तथा ज्योतिष-शास्त्र में पारंगत थे।

वंश-परम्परा से ये पुरोहित थे किन्तु इन्होंने इस वृत्ति का परित्याग किया और श्रीनगर के 'रिसर्च-आर्क्यालोजी' विभाग में पाण्डुलिपि तथा अमुद्रित ग्रंथों का संशोधन आदि कर्म के लिए ये द्वितीय पण्डित के रूप में नियुक्त हुए। यह विभाग पहले 'रणवीर रिसर्च इन्स्टीट्यूट' से विख्यात था; इसी को १९०२ ई० में पुनः उद्घाटन करके प्रतिष्ठित किया गया। 'रिसर्च' विभाग के अध्यक्ष श्री जे० सी० चटर्जी के समय ये द्वितीय पण्डित थे। सम्पादन-कार्य में मुख्य रूप से ये अध्यक्ष की सहायता करते रहे। ५० वर्ष की अल्पायु में ही, १९३४ ई० में इनका देहावसान हुआ।

श्री उत्पलदेवाचार्य कृत 'श्री शिवस्तोत्रावली' नामक प्रसिद्ध शिवस्तोत्र पर श्री क्षेमराज ने संस्कृत टीका लिखी तथा श्री लक्ष्मण राजानक ने भाषा में टीका लिखी। इसके अन्त में दिये गये श्लोकों से यह ज्ञात होता है कि पं० महेश्वर राजानक सांख्य, योग तथा अन्य शास्त्रों में निष्णात थे। ये पाणिनी के व्याकरण के पतञ्जलि के समान भाष्यकार थे।

भगवान शिव की सहज भक्ति से इनका हृदय ऐसे प्रफुल्लित हुआ जैसे सूर्य-किरण से पंकज।

शैव-शास्त्र में ये स्वामी लक्ष्मण राजानक तथा अन्य कई विद्वानों के गुरु थे।

इनके सम्बन्ध में ये श्लोक हैं —

सांख्ययोगादिशास्त्रज्ञः पाणिनीये पतञ्जलिः।
शिवार्करश्मिसम्पातव्यः कोशहृदयाम्बुजः॥
महामाहेश्वरः श्रीमान् राजानक महेश्वरः।
शैव-शास्त्र-गुरुः सोऽयं वाक्पुष्पैरस्तु पूजितः॥

—लक्ष्मीनारायण सप्रू

नागार्जुन और उसका दर्शन

अतीत की कल्पना जब हम कश्मीरवासी करते हैं तो नुन्द ऋषि और लल-द्येद तक पहुँचकर रुक जाते हैं। कभी-कभी तो उनसे भी पीछे जाकर अवन्ति-वर्मन और ललितादित्य की ओर उनकी शक्ति और साम्राज्य-संचालन के गीत गाते हैं। इसी प्रकार साहित्यिक क्षेत्र में भी कल्हण और बिल्हण का दामन थाम लेते हैं।

हमें यहाँ की शैव विचारधारा के लिए जितना गौरव और अभिमान है उतना शायद ही किसी दूसरी धारा के लिए हो। इस प्रकार हम गत पन्द्रह सौ या सोलह सौ साल की कथा को, कला को, कौशल को प्रत्येक अवसर पर दुहराते हैं।

खेद है कि जहाँ हम बार-बार इस बात पर बल देते हैं कि हमें अपने को अपने पूर्वजों और सांस्कृतिक संपदा से अलग नहीं करना चाहिए वहाँ हम यह भूल जाते हैं कि हमारा अतीत वास्तव में उतना ही सत्य और सनातन है जितना सतीसर और कश्यप भूमि है। इस भूमि ने जितनी चिन्तन-धाराओं को जन्म दिया है और परिमार्जित किया है, शायद ही विश्व के किसी अन्य क्षेत्र को वह महत्त्व प्राप्त हुआ हो।

कई बार इतिहासवेत्ता यह भी लिखते हैं कि वेदों का जन्म कश्मीर में हुआ है। यहाँ के सपुत्रों ने हर क्षेत्र में आश्चर्यजनक परिणाम प्राप्त किये हैं।

इसी परिप्रेक्ष्य में मैं इस लेख के माध्यम से उन महापुरुषों को श्रद्धांजलि अर्पित करना चाहता हूँ जिनको हमने जान-बूझकर भुला दिया है लेकिन जिनके बारे में विश्व-भर में शोधकार्य जारी है। जिनके कृतित्व को आज भी विश्व समादर की दृष्टि से देखता है। यहाँ मैं उन कतिपय बौद्ध दार्शनिकों का उल्लेख करना चाहता हूँ जिनकी सेवाओं का ऋणी सारा विश्व है।

हम सभी इस बात से परिचित हैं कि कश्मीर बौद्ध धर्म का केन्द्र एक हजार वर्षों तक रहा है। यहाँ से ही यह धर्म तिब्बत, चीन, मध्य एशिया आदि देशों में फैला। यहाँ के धर्म प्रचारकों ने अनेक कष्टों को झेलकर अपने कर्त्तव्य को निभाया है। इनमें धर्ममित्र, रत्नचिन्त, प्रक्ष, गुणवर्मन, पंडित सोमनाथ, श्याम भट्ट और नरोपा का नाम लेना यहाँ चाहता हूँ। ऐसे सैकड़ों महापुरुष हुए हैं जिसको हम पूर्णतया भूल ही चुके हैं। कितना सुन्दर होगा यदि हम अपने को वैदिक, बौद्ध, जैन,

सनातनी आदि विभिन्न मतों के दायरों में कैद न करते हुए केवल एक सत्यान्वेषी के नाते और सती सरोवर और कश्यप-ऋषि की सन्तान के नाते अपनी सारी चिरन्तन संपदा को समझने, स्मरण करने और उसको पुनः प्रकाश में लाने का प्रयास करेंगे।

बौद्ध जगत् को इस बात का गौरव है कि मथुरा और कश्मीर में इस धर्म को परिपुष्ट करने के लिए जितना प्रयास किया है, त्याग किया है उतना किसी ने नहीं। कला की दृष्टि से भी कश्मीर और मथुरा ही दो प्रमुख केन्द्र रहे हैं। भारतीय कला गान्धार कला के नाम से विख्यात है। इसमें कश्मीर से लेकर कन्धार तक सारा क्षेत्र सम्मिलित है। चाहे इतिहास के क्रूर हथौड़े ने यहाँ कला को अपरिमित हानि पहुँचाई हो किन्तु वह आज भी अपने अवशेषों में और जीवित और ज्वलन्त कला के रूप में अद्वितीय है और विद्यमान है।

कल्हण के अनुसार अशोक से पूर्व ही कश्मीर में बौद्ध विहार विद्यमान थे। अशोक ने बौद्ध धर्म की महापरिषद् के लिए कश्मीर से भी धर्माचार्य बुलाये थे। इस देश के विद्यापीठों में विश्व के अनेकानेक देशों के जिज्ञासु शिक्षा प्राप्त करने आते थे।

पांपुर के केसर से बौद्ध भिक्षुओं के परिधान रँगे जाते थे।

इसी प्रकार की सांस्कृतिक संपदा यहाँ का 'मूल सर्वास्तिवाद' भी है जिसके बारे में सारे बुद्धमतावलंबियों को श्रद्धा है क्योंकि यह चिन्तनधारा कश्मीर पर एक हजार वर्ष तक छाई रही और विश्व-भर में व्याप्त हुई। इस मूल सर्वास्तिवाद के जन्मदाता इस लेख के सारसर्वस्व स्वनामधन्य विश्व विख्यात अद्वितीय दार्शनिक श्री नागार्जुन हैं।

नागार्जुन वास्तव में द्वितीय बुद्ध या बोधिसत्व गिने जाते हैं। इनका अद्भुत चिन्तन इनकी कृतियों में सर्वत्र विद्यमान् है। ये उन कुछ महापुरुषों में हैं जिन्हें हम अजर और अमर मान सकते हैं। जिनके ऊपर स्थान और समय अपना प्रभाव डाल नहीं पाते हैं।

नागार्जुन का बाल्यकाल

इनके बाल्यकाल के विषय में तथा परिवार के बारे में ज्यादा विदित नहीं होता है। कहा जाता है कि इन्हें माता-पिता ने सातवें वर्ष की आयु में त्याग दिया था। ज्योतिषियों ने इनके बारे में कहा था कि इन्हें सातवें वर्ष में मृत्यु होगी। तत्पश्चात् भिक्षु संघ ने इन्हें अपनाकर पाला-पोसा।

दूसरी कथा के अनुसार ये तत्कालीन कश्मीरी नरेश के दरबार में नियुक्त थे। जहाँ इनका जीवन विषय लिप्सा के कारण बिगड़ गया था। इन्हें एक दिन रँगे हाथों पकड़ा गया और फाँसी की सजा सुनाई गई किन्तु राजदरबार में कुछ

समय गुजारने और सेवा के लिए इन्हें जीवनदान दिया गया किन्तु यहाँ से इनके जीवन में महान् परिवर्तन प्रारम्भ होता है, ये अपने जीवन को सत्कार्य में लगाने के लिए बौद्ध धर्म में प्रवेश करते हैं।

महाराजा अभिमन्यु और नागार्जुन

इनके जीवन काल में कश्मीर बौद्ध धर्म का प्रमुख केन्द्र रहा है। इन्हीं दिनों महाराजा अभिमन्यु यहाँ के राजा थे। वे स्वयं विद्या-प्रेमी थे और बौद्ध धर्म के अनुयायी थे। इनके काल में ही सर्वप्रथम महाभाष्य का अध्ययन कश्मीर में प्रारम्भ हुआ था। चन्द्र पंडित नामक वैयाकरण ने चान्द्र व्याकरण की रचना की थी।

इन्हीं अभिमन्यु ने श्रीनगर के पश्चिम में बेम्युन नामक नगर बसाया था। इसी राजा के समय में नागार्जुन हुए हैं।

नागार्जुन और एकता-प्रयास

आपने बौद्ध धर्म को विघटन से बचाया। वास्तव में बुद्धजी के निर्वाण के अनन्तर ही भिक्षु-संघ से धर्म की स्थिरता के लिए प्रयास होने लगे थे। इनसे पहले बौद्ध जगत् सर्वास्तिवादियों और शून्यवादियों के मध्य विभक्त था। इन दोनों संप्रदायों के मध्य एकता पैदा करने के लिए आपने माध्यमिक शाखा के रूप में नया रास्ता निकाला। परिणामस्वरूप दोनों संतुष्ट होकर एकत्व का आनन्द लेने लगे।

वैंकट रमण नामक इतिहास लेखक ने इसी बात को ध्यान में रखकर निम्नांकित विचार व्यक्त किये—

"Immediate interest was to set in order the spiritual life of the Buddhist Community."

ऐसे ही कुछ विचार एक यूरोपीय विद्वान् के भी प्राप्त होते हैं। उसके अनुसार नागार्जुन ने दो भिन्न अतिरेकवादियों को एक ही सूत्र में जोड़ दिया। ऐसे प्रयास इनसे पहले भी हुए थे किन्तु जितनी सफलता नागार्जुन को प्राप्त हुई उतनी अन्य किसी को नहीं।

इनके पूर्व भी पाँच सौ वर्ष तक कश्मीर बौद्ध धर्म का गढ़ बना था। यहाँ के धर्म-प्रचारक तिब्बत, चीन, मंगोलिया आदि देशों में जाया करते थे। सम्राट् अशोक की धर्मसभा में जो ई० पू० २४० में बुलाई गई थी, उसमें भी कश्मीर के बौद्ध निमन्त्रित किये गये थे। इसी प्रकार कनिष्क ने यहाँ तीसरी धर्मसभा बुलाई जिससे बौद्ध धर्म में महान् परिवर्तन हुआ। इसने वैदिक और बौद्ध धाराओं को

समेटकर एकरूप कर दिया था। इस एकरूपता को आधुनिक इतिहासकार 'Transformation of Buddhism' का नाम देते हैं। इस परिप्रेक्ष्य में देखकर हमें विदित होगा कि नागार्जुन कश्मीर-भूमि की विभिन्न चिन्तना-सरणियों के अद्भुत संगम थे।

षड् अद्वैतवन

इनका आश्रम उस जमाने में षड् अद्वैतवन नामक संस्कृति केन्द्र में विद्यमान था। यह षड् अद्वैतवन वर्तमान 'हअरवन' ग्राम है। यह श्रीनगर के पूर्वोत्तर कोण में निशात नामक प्रसिद्ध बगीचे के क्षेत्र में स्थित है। यहाँ खुदाई करके कनिष्क कालीन वास्तुकला के कई अवशेष प्राप्त हुए हैं।

अश्वघोष

संस्कृत भाषा के प्रसिद्ध महाकवि अश्वघोष इनके गुरु स्वीकार किये जाते हैं। अश्वघोष ने भगवान् बुद्ध की जीवन-कथा संस्कृत में लिखकर संस्कृत के विद्वानों के लिए बौद्ध धर्म में प्रवेश करने का रास्ता साफ किया है। इन्हें बोधिसत्व स्वीकार किया जाता है। इनमे दीक्षित नागार्जुन ने गुरु परम्परा में तेरहवाँ स्थान प्राप्त किया है। इनसे पूर्व जिन महानुभावों को बौद्ध जगत् में महत्त्व प्राप्त है, वे हैं—

महाकश्यप, आनन्द, शून्यसत्ता, अश्वघोष तथा नागार्जुन आदि।

यह परम्परा ही बौद्ध धर्म की रक्षक मानी जाती है।

कारण यह है कि उपनिषद् ज्ञान ने बौद्ध जगत् को एक चुनौती-सी दी थी। उपनिषद् ज्ञान ने तथा इसके ऋषि-मुनियों ने अपने चरित्र के बल से तथा दार्शनिक तथ्यों से तत्कालीन समाज को आकृष्ट किया था। तथ्य यह है कि गंगा और यमुना के क्षेत्र में उपनिषदों पर आधारित आध्यात्मिक ज्ञान ने अपने विशद सिद्धान्तों के बल पर बौद्ध जगत् के सामने सुरक्षा का प्रश्न पैदा किया था। इस नई चुनौती का सामना करने के लिए उस युग में मथुरा में बौद्ध विद्वानों ने जिस वाद को जन्म दिया वह सर्वास्तिवाद कहलाया। इसमें भुक्ति-मुक्ति दोनों का समावेश था, यह लहर कश्मीर में मूल-सर्वास्तिवाद के नाम से विख्यात हुई। इसका कारण यहाँ के विद्वानों का स्थानीय चिन्तना को भी इसमें जोड़ने का सत्प्रयास था। उन्होंने इसके साथ स्थानीय सांस्कृतिक संपदा को भी जोड़ा और इस प्रकार पेश किया कि इसे किसी भी रूप में पराई संपदा के नाम से स्वीकार न किया जाये।

वास्तव में यहाँ की आम जनता बौद्धिक स्तर पर जागरूक थी। उनके गले कोई ऐसी चीज उतारने के लिए जरूरी था कि उसे स्थानीय रंग में रँगा जाये, सुदृढ़ विचारधारायें भी स्थानीय परिवेश के अभाव में पनपती नहीं।

माध्यमिक सम्प्रदाय

इस मेलजोल को ही नागार्जुन का माध्यमिक संप्रदाय कहते हैं। इसमें तंत्र-प्रक्रिया भी सम्मिलित है। 1931 में गिलगित से कुछ हस्तलिखित तंत्रग्रन्थ प्राप्त हुए हैं जिनका सम्बन्ध तंत्रयान से है। नागार्जुन के नाम के साथ नाग शब्द का सम्बन्ध इस बात को प्रकट करता है कि पहले यहाँ के नागों ने सम्भवत: इस धर्म को अपनाया हो। इसके लिए हमें कुमारजीव द्वारा लिखित नागार्जुन की जीवनी का प्रमाण है जिसमें वर्णन आया है कि 'प्रज्ञापारमिता-शास्त्र' नागार्जुन को महानाग के पुस्तकालय से प्राप्त हुआ था। लद्दाख और कश्मीर में नागपूजा अभी तक प्रचलित है।

नागार्जुन ने बौद्धगया के गन्धोल मंदिर के चारों तरफ पत्थरों की दीवार बनाई थी। यह विचार तिब्बत इतिहास के ज्ञाता H. Wenzle का है। आपने कश्मीर और नालन्दा में शिक्षा प्राप्त की थी।

नागार्जुन के प्रभाव के कारण यहाँ के विद्वानों ने कई रीति-रिवाजों को त्याग देना स्वीकार किया किन्तु इसके कारण दैवी आपत्ति का सामना यहाँ की प्रजा को करना पड़ा। हिमपात अत्यधिक हुआ। तत्कालीन राजा को घाटी से बाहर जाकर रहना पड़ा और शीतऋतु की समाप्ति पर वह पुनः यहाँ पधारा।

गोनन्द तृतीय ने इन रीति-रिवाजों को पुनः प्रचलित किया क्योंकि नीलमत पुराण में स्वीकृत रीति-रिवाजों को यहाँ के समाज ने सदा प्रमुखता दी है।

स्थितिकाल

नागार्जुन के स्थितिकाल के विषय में निम्न तथ्य भी सामने आते हैं। ह्वेनसांग के अनुसार उनका स्थितिकाल ई० पू० 99 वर्ष रहा है। चीनी भाषा में बुद्धचरितम् का पद्यानुवाद करने वाले कुमारजीव ने ईसा की दूसरी शताब्दी में स्वीकार किया है। हरिहर शास्त्री के अनुसार तृतीय शती के उत्तरार्ध में रहे होंगे, कुमारजीव आदि की विभिन्न सम्मतियों के आधार पर इतिहासकारों ने नागार्जुन की स्थिति दूसरी शती में ही स्वीकार की है।

नागबोधि और नागार्जुन

कई विद्वान् नागबोधि नामक बौद्ध सिद्ध को ही नागार्जुन स्वीकार करते हैं। इनका वर्णन 'शिवसूत्र' नामक कश्मीर शैव दर्शन के प्रमुख ग्रन्थ में मिलता है। 'अनङ्गीकृत अधरदर्शनस्थ नागबोधि आदि सिद्ध आदेशमः' इस ग्रन्थ के इस प्रथम सूत्र में इस सिद्ध का वर्णन मिलता है। किन्तु यह सिद्ध इतिहासज्ञों के अनुसार सातवीं शती में हुए हैं।

उत्तरकाल

महाराष्ट्र के प्रसिद्ध नगर नासिक में प्राप्त शिलालेख के अनुसार उनके जीवन का उत्तरकाल इसी नासिक नगर में गुजरा। वे श्री पर्वत पर निवास करते थे, वास्तव में उनका यह निवास तत्कालीन शासक गौतमीपुत्र ने बनाया था। यह दूसरा जीवनकाल 60वें वर्ष से प्रारम्भ होता है। उनकी जिन्दगी सौ साल तक रही और वे सदा अपने सिद्धान्त की शिक्षा देते रहे।

कुछ समय पहले तक नागार्जुन के विषय में मत प्रचलित था कि दो नागार्जुन हुए हैं। एक उत्तर का, दूसरा दक्षिण का। एक कश्मीरी, दूसरा मराठी। किन्तु चीनी भाषा में उपलब्ध उनकी पत्रावली जिसमें वे पत्र भी शामिल हैं जो उन्होंने गौतमीमुत्र को लिखे थे तथा नासिक शिलालेख में वर्णित नागार्जुन और कश्मीरी नागार्जुन दोनों प्रज्ञापारमिता के लेखक हुए हैं। दोनों बौद्ध थे, दोनों का जीवन सन्त-जीवन था। इससे एक ही नागार्जुन तय हुआ है। दोनों नरेश यानी अभिमन्यु और गौतमीपुत्र समकालीन ही गिने जाते हैं। दोनों बौद्ध धर्म के अनुयायी और बौद्ध सन्तों के आश्रयदाता रहे हैं। ये दोनों कनिष्क के बाद हुए हैं। साथ ही कुमार-जीव द्वारा लिखित नागार्जुन की जीवनी में कहीं पर भी दो नागार्जुनों का वर्णन नहीं मिलता है। दो नागार्जुनों की भ्रान्ति शनैः-शनैः हटती जा रही है। यह एक ही जीवन के दो भाग हैं—पूर्वार्ध और उत्तरार्ध भाग हैं। ये दो भाग दो भिन्न स्थानों पर गुजरने से दो की भ्रान्ति पाई जाती है।

दार्शनिक देय

नागार्जुन ने 'प्रज्ञापारमिता' नामक दर्शन ग्रन्थ लिखकर बौद्ध धर्म को सिद्धान्तवादी रूप प्रदान किया। इस सिद्धान्त के अनुसार नागार्जुन की सारी बातों को चार शीर्षकों में बाँटा है। प्रज्ञापारमिता के श्लोकों को बुद्ध जी के प्रति संबोधित किया गया है। इसके श्रोता देवता हैं। यह ग्रन्थ गृद्धकूट पर्वत पर लिखा गया है, यह

१. सत् चेतना—Existance Energy
२. असत् जड़ जगत्—non-Exintance matter
३. तत् उभय जड़-चेतना दोनों—Combination of Existance and Non-Existance Body and Soul।
४. अनउभय, न जड़ न चेतन—Matter and Energy, negation of Existance and Non-Existance Jnal is trasendental state.

इन चारों अवस्थाओं पर उतरने वाला सिद्धान्त या वस्तुतथ्य पर आधारित के अन्य तत्विरोधी मिथ्या है।

इस दार्शनिक सिद्धान्त को बतलाने वाले ग्रन्थ का ही नाम प्रज्ञापारमिता-शास्त्र है।

प्रज्ञापारमिता

यह संस्कृत के दो शब्दों से बना है। प्रज्ञा याने समग्र ज्ञान का पुंज। यही शून्यता है। शून्य का अर्थ चेतना का अभाव नहीं अपितु वह परमसत्ता या अनुग्रह और अनुत्तरावस्था जिसमें सारी चेतना, जड़ता, अभाव और भावातीत अवस्था का समावेश है। यह शून्यता सारी भौतिक सत्ता को लाँघकर परावस्था तक व्याप्त है। यही भावातीत अवस्था में प्रवेश दिलाती है। दूसरा शब्द पारमिता है। इससे साधक निर्वाण की तरफ बढ़ जाता है। दान, नैतिकता का व्यवहार, सहनशीलता, कार्यदक्षता, शान्ति, संतोष, प्रज्ञा आदि गुण साधकों को संसार के पार निर्वाण की स्थिति में पहुँचा देते हैं।

इस 'प्रज्ञापारमिताशास्त्र' का महायान में उच्चस्तरीय आधिकारिक ग्रन्थ माना जाता है। महायान के अनुयायी प्रथम अपने दुःखों तथा असंतोष को परास्त करते हैं। यह शीघ्र फलसिद्धि का धर्म है, इसके द्वारा साधक बुद्ध बनकर फिर दूसरों को मुक्ति का मार्ग खिलाते हैं। उन्हें शोक, असंतोष से छुट-कारा दिलाते हैं। बुद्धत्व का लक्ष्य शून्यता प्राप्त करना है। शून्यता याने सभी अस्तित्व की जननी या केवल सत्य।

शून्यवाद

शून्यवाद जिसके बारे में ऊपर वर्णन किया गया है, उसे माध्यमिक सिद्धान्त भी कहा जाता है, इसी माध्यमिक शास्त्र का वर्णन प्रज्ञापारमिताशास्त्र में आया है। यह ग्रन्थ इसी सिद्धान्त की व्याख्या करता है। इसका दूसरा नाम अष्ट-शास्त्रिका भी है। लेखक ने इसे दिव्यलोक से प्राप्त किया था। इसे revealed book कह सकते हैं। इससे पूर्व उन्होंने एक अन्य ग्रन्थ भी लिखा था। इसका नाम विंशतिका-शास्त्र भी है। इनके 'पंचविचतिका' शास्त्र का तीसरी शती की समाप्ति पर चीनी भाषा में अनुवाद किया गया है।

नागार्जुन और मूल सर्वास्तिवाद

इनसे पूर्व बौद्ध धर्म शून्यवाद याने केवल मुक्ति पर बल देता था। इसके कारण सामाजिक रचना, सामाजिक तानाबाना ढीला पड़ गया था। इसकी प्रति-क्रिया में ऐसे बौद्ध धर्म ने जन्म लिया जो वास्तविक जीवन से जुड़ा हुआ था, जो जीवन और साधना के दोनों क्षेत्रों का संगम था।

इस मुक्ति-मुक्तिवाद का ही नाम सर्वास्तिवाद पड़ा और कश्मीर के विद्वानों ने इसमें अतीत से चली आई परम्परा और मर्यादा को भी जोड़कर मूल सर्वास्तिवाद नाम प्रदान किया।

नागार्जुन और तन्त्रयान

मूल सर्वास्तिवाद तांत्रिक प्रक्रिया और पद्धति है। तंत्र का प्रारंभ अथर्ववेद से स्वीकार किया जाता है। इसे ही सहज धर्म भी कहते हैं। कश्मीर शैव मत के समान ही तन्त्रयान की परावस्था तक पहुँचने के लिए शिव और शक्ति दो ही मार्ग हैं।

यह धारिणी पर बल देता है। धारिणी याने यंत्र गले में डालना और उसका स्मरण आवश्यक है। इस योग पर बौद्ध धर्म के ग्रन्थ 'सद्धर्म पुंडरीक' में काफी वर्णन प्राप्त होता है।

तंत्रचक्रों को नागार्जुन ने प्रारंभ किया है—

The introduction of the pritorial details in ascribed to the great king Kanishka, who we know from Indian monk Nagarjuna who lived in the second Century A. D. under the patronage of the successors of the Scythian King Kanishka who we know from Hiven Triang Employed artists in great numbers in the decoration of Buddhist buildings."—A Austine by waddell "Tibtan in Buddhism."

इस यंत्र शक्ति से दुःखों का नाश, प्रकाश का उदय, देवता और शक्तियों का आवाहन संभव हो जाता है। इस विषय पर एक अन्य तंत्रग्रंथ 'अमोघवज्र' नामक दार्शनिक ने लिखा है। यह मध्य एशिया में प्राप्त हुआ है। इसी प्रकार 1931 में गिलगित में एक स्तूप से विभिन्न धारिणिओं के विषय में ग्रन्थ मिले हैं। इनमें आर्य अवलोकितेश्वर का आवाहन किया गया है।

सहज योग और नागार्जुन

सहज योग के विषय में 'प्रज्ञापारमिताशास्त्र' में वर्णन आया है। असंग और वसुबन्धु जैसे महान् संत भी इसी सहज योग को प्रमुखता देते हैं। आज भी लद्दाख तथा अन्य बौद्ध देशों में सहज योग की क्रिया जारी है। लद्दाख तथा तिब्बत में 'ॐ मनिपदमै हुँ' का जाप महान् पुण्य का दाता स्वीकार किया जाता है।

मूल सर्वास्ति के प्रमुख सिद्धान्त

संपूर्ण सत्यता	समय	परमाणु	चेतना
सत्ता	भूत		जन्म
विनाश	भविष्य	पदार्थ याने	मृत्यु
मुक्ति	वर्तमान	पंचभौतिक	संग
		पदार्थ	कामना
		नाम और रूप	

शंकराचार्य और नागार्जुन

जहाँ इस मूल सर्वास्तिवाद ने बौद्ध धर्म में एक क्रान्ति ला दी, वहाँ औपनिषद्वाद या ब्रह्मवाद के महाव्याख्याता शंकराचार्य जी के ब्रह्म, माया और जीव के सिद्धान्त के समालोचकों ने नागार्जुन के माध्यमिक संप्रदाय का ही अनुकरण इसे माना है। शून्यता को ब्रह्म का नाम देकर नये रूप में प्रस्तुत किया है। इसीलिए कई लोग तो इन्हें प्रच्छन्न बौद्ध भी कहते हैं। शंकराचार्यजी ने भिक्षुसंघ के समान ही दशनामी नाम से संन्यासी संघ की स्थापना भी की।

वेदान्त के ब्रह्म, जगत् और जीव या सत्, चित् और आनन्द इन्हीं नागार्जुन के सत्, असत्, तद्उभय, तद्अनुभय के सिद्धान्त पर आधारित है। बौद्ध दर्शन के शून्यवाद का सिद्धान्त वह भावातीत अवस्था है जहाँ कुछ भी शेष बचता नहीं। यही अनुत्तरा दशा है। नागार्जुन ने शून्यता याने अन्‌उभय Negation of Existance and Non-Existance इसी अर्थ में प्रस्तुत किया है। इसे सकल जननी का नाम भी दे सकते हैं।

कश्मीर शैवदर्शन और शून्यवाद

कश्मीर शैव दर्शन के प्रमुख शास्त्र 'स्पन्द कारिका' जो वसुगुप्त ने लिखी है और जिस पर क्षेमराज की व्याख्या उपलब्ध है, में शून्यवाद पर सविस्तार प्रकाश डाला है और इसे अवास्तविक माना है।

शैवों की दृष्टि में ऐसी अभावावस्था मूढ़ता के अतिरिक्त कुछ नहीं, जिसमें ज्ञान का पूरा अभाव है। जिस अभाव का हमें पश्चात् बोध होता है वह गईगुजरी बातों को पुनः यद्वा-तद्वा स्मरण करने के तुल्य है। यह निद्रा के समान ही मन की स्थिति हो सकती है, यह अस्थिर अवस्था है।

नागार्जुन और शून्यवाद

शून्य वह स्थिति है जहाँ ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय कुछ भी शेष रहता नहीं है। नागार्जुन शून्यावस्था को आत्मतत्व स्वीकार करते हैं। यह आत्मतत्व सर्वज्ञता

का स्वरूप है । इसी को अश्वघोष ने इस प्रकार किया है—

दीपो यथा निर्वृति अभ्युपैति
नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम्
दिशं न कांचित् विदिशं न कांचित्
स्नेह क्षयात् केवलं एति शान्तिम्
एवं कृती निर्वृति अभ्युपैति
नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम्
दिशं न कांचित् विदिशं न कांश्चित्
क्लेश क्षयात् केवलं एति शान्तिम् ।।

मुक्तावस्था से अभिप्राय अन्तरिक्ष में प्रवेश नहीं, न अवनि में; यह तो केवल शान्तावस्था का ही नाम है । यद्यपि इस श्लोक में आत्म-सत्ता का निषेध है किन्तु इसे शंकराचार्य जी ने इस प्रकार व्यक्त किया है कि निषेध ही सत्ता की स्वीकृति है । चेतना किसी भी अवस्था में अनुपस्थित नहीं । शैवशास्त्र में शून्यवाद के बारे में वर्णन इन श्लोकों में आया है—

नाभावो भाव्यतां एति न च तत्रास्ति अमूढता ।
यतोऽभियोग संस्पर्शात् तदासीत् इति निश्चयः ।।
अत स्तत् कृत्रिमं क्षेमम् सौषुप्तयदवत् सदा ।
न त्वेवं स्मर्यमाणत्वं तत् तत्वं प्रतिपद्यते ।।
कार्योन्मुखः प्रयत्नोऽयं केवलं सोऽत्र लुप्यते ।
तस्मिन् लुप्ते विलुप्तोऽस्मि इति अबुधः प्रतिपद्यते ।।
न तु योन्तर्मुखो भावः सर्वज्ञत्व गुणास्पदम् ।
तस्य लोपः कदाचित् स्यात् अन्यस्यानुपलभ्यनात ।।

यहां इन श्लोकों को प्रस्तुत करने से अभिप्राय शैवदर्शन के इस सिद्धान्त को प्रस्तुत करने से है जिसमें शून्यवाद को केवल अतीत की स्मृति, सुषुप्ति की अवस्था के समान कोई कृत्रिम अवस्था और मूढ़ता आदि कहकर अस्वीकार करते हैं । नागार्जुन के अनुसार शून्य वह स्थिति है जहाँ ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय कुछ भी शेष नहीं रहता, यह समाधि स्थिति है । इसमें ज्ञाता और ज्ञेय जगत् समाप्त हो जाते हैं । इस शून्यता का स्मरण समाधि के पश्चात् व्युत्थान की अवस्था में व्यक्त हो जाता है ।

नागार्जुन और अहंतावाद

नागार्जुन ने सांख्य तथा वैशेषिक दर्शनों का विरोध जगह-जगह किया है । वह इनके ब्रह्मवाद और आत्मवाद को स्वीकार नहीं करता । वह आस्था के बदले अहन्ता या अतिमानस अथवा भावातीत अवस्था को सर्वोत्कृष्ट अवस्था

मानता है। इन्होंने ही पहले अहन्ता या undivided (Prajna) consciousness अथवा अद्वयधर्म का सिद्धान्त प्रस्तुत किया है।

इसी अद्वय धर्म या अहन्ताभाव को कश्मीर शैवदर्शन के अनुसार इदन्ता-अहन्ता दोनों में भेद की समाप्ति कहा जाता है। इसी का नाम एकत्व होना है।

आज के युग में अतिमानस चेतना के व्याख्याता श्री अरविन्द घोष और श्रीमाता को गिना जाता है। इसी को इकबाल ने खुदी के नाम से प्रकट किया है। इसी को पाश्चात्य दार्शनिक Supremental consciousness कहते हैं। अतिमानस की अवस्था व्यक्ति को क्षुद्रता से निकालकर विशालता की ओर ले जाती है। यह उसे विभिन्नता से एकता की ओर, द्वैत से एकत्व की ओर ले जाकर मन-बुद्धि-अहं या चिति की एकरूपता में ला खड़ा करती है। यह वह अवस्था है जहाँ अहं का ही दर्शन सर्वत्र किया जाता है। जहाँ अहं को अतिरिक्त कुछ नहीं।

जहाँ भेद की दीवारें गिर जाती हैं, जहाँ सम्प्रदाय या सामयवाद एक तरफ हट कर साधक को प्रकाश-रूप और विमर्श-रूप दोनों प्रदान करते हैं। वह स्वयं ही सब कुछ बन जाता है।

नागार्जुन की रचनायें

कुमारजीव ने नागार्जुन की जीवनी लिखी है। उसके अनुसार नागार्जुन ने निम्नलिखित रचनायें की हैं—

उपदेशशास्त्र : एक लाख गाथायें या श्लोक।

महारुव्योयाम शास्त्र : पाँच हजार गाथायें।

माध्यमक शास्त्र : पांच श्लोक मूल संस्कृत में प्राप्य।

अकुतोभय शास्त्र : एक लाख श्लोक।

पत्रावली : चीनी भाषा में प्राप्य।

विभाषाशास्त्र

विभाषाशास्त्र मूलसर्वास्तिवाद के सारे साहित्य का नाम है। इसको ग्रन्थ के रूप में कात्यायनीपुत्र ने ग्रथित किया है। इसका केन्द्र कश्मीर था। इसके सात अभिधर्म ग्रन्थ थे। इनका अध्ययन कश्मीर में अधिकाधिक होता था। अभिधर्म का सम्बन्ध दार्शनिक प्रवचनों का अनुभवी व कतिपय वयोवृद्ध लोगों द्वारा किया संकलन। सम्राट अशोक की तृतीय धर्मसभा (240 B.C.) के उपरान्त ही अभिधर्म स्कूल का अभ्युत्थान हो गया।

तन्त्रयान और नागार्जुन

दूसरों को दुःख से छुटकारा दिलाना, मुक्ति दिलाना, प्रतीकों, मन्त्रों,

अनुष्ठानों और अनुशासन तथा मिलारिया और नारोषा के जीवन के उद्धरण सहायक है।

सर्वास्तिवाद से प्रतीकात्मकता

सूर्य, चन्द्र, पदम, माला, तारादेवी, अवलोकिश्वर मंजुश्री, इन सभी का अपना-अपना अर्थ बौद्ध तंत्रों में निश्चित है।

इस प्रकार सर्वास्तिवाद के जन्मदाता, महान् दार्शनिक योगशक्ति के पुंज नागार्जुन का जीवन मानवमात्र के उत्थान, निर्वाण और रचना के लिए सदा प्रेरणादायक रहेगा। हमें अपने को सारे सांस्कृतिक दाय के साथ जोड़ना चाहिए।

लीलानिवास
गणपतियार
श्रीनगर

मोतीलाल 'पुष्कर'

लसकाक राजानक

श्री लसकाक का अपर नाम लक्ष्मीराम था। इनकी माता का नाम श्रीमती 'मेरु' था और पिता का नाम श्रीगोपाल राजानक। बाल्यकाल में ही उन्होंने अपने सुयोग्य पिता से सबकोष; व्याकरण, काव्य और शास्त्र आदि पढ़ लिए थे। महाभाग-लसकाक बहुत ही कुशाग्र बुद्धि थे और उन्हें विवेकशालिनी बुद्धि का वरद आशीर्वाद मिला था। इसके अतिरिक्त वे लेखन कला में बहुत ही प्रवीण थे, सुना जाता है कि उन्होंने बहुत प्राचीन ग्रन्थ अपनी सुन्दर लेखन कला के द्वारा आकर्षक बना दिये थे और जीवन-भर यह भी उनकी वृत्ति का एक विशेष साधन था। शैवशास्त्र के वह मर्मज्ञ थे और उन्होंने 'परात्रिशका' पर एक सारगभित, सुसरल लघु विवृति नाम वाली व्याख्या प्रणीत की है, उन्हें धीरे-धीरे महापण्डित के नाम से प्रसिद्धि मिल गई। इनका एक और व्यवसाय चिकित्साशास्त्र आयुर्वेद भी था और वे उस समय के मूर्धन्य चिकित्साशास्त्रियों में सर्वोपरि थे, उन्होंने इस चिकित्सा विषयक ज्ञान को 'वैदिसंग्रह' नाम का एक ग्रन्थ रचडाला।

उनसे अनेक अन्तेवासी शैवमार्ग में परीक्षा पाते रहे। जनश्रुति है कि वे अठासी वर्ष की आयु में देह त्याग दिया था। परन्तु खेद से कहना पड़ता है कि उनकी प्रामाणिक जन्म तिथि का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता। उन द्वारा प्रणीत ग्रन्थों में से कुछ यहाँ पर गिनाये जा रहे हैं—

(१) श्रीमद्भगवद्गीता टीका; (लासकी)
(२) धर्मसंग्रह;
(३) धारीरिकसारसंग्रह,
(४) स्फोट पद्धति,
(५) मीमांसासार।

कहा जाता है कि उन्होंने महाराजा रणवीरसिंग के परिषद् को भी कई बार सुशोभित किया था। ये निःसन्तान थे और इन्होंने अपनी बहन के पुत्र को दत्तक रूप में लिया था जिसका सुपुष्ट उल्लेख हमें उनसे प्रणीत एक श्लोक से मिलता है।

महामनीषी वासुदेव गंजू

इन दार्शनिक कवि महोदय का जन्म महाराज-गुलाबसिंह के शासनकाल के उत्तरार्ध में श्रीनगर में हुआ था, ऐसी जनश्रुति है। यह 'ईश्वरकाक' महोदय के दत्तक पुत्र तथा 'लसकाक' महोदय के पौत्र थे। ऐसा जनविश्वास है कि उन्होंने समाधि अवस्था में परंब्रह्म का साक्षात्कार किया था और काश्मीर नरेस महाराज गुलाबसिंह के पुत्र महाराजा रणवीरसिंह के समय में १८५६ से सत्तासी वर्ष पर्यन्त बहुत विख्यात हुए। इन्हें भी अपने पिता श्रीयुत लसकाक के वंश को आगे चलाने के लिए अपनी बहन का पुत्र दत्तक लेना पड़ा। ये महापण्डित शैव-शास्त्र के व्याख्याता और वेदान्त-शास्त्र के भी निष्णात पण्डित थे और चित्त प्रदीप नामक ग्रन्थ उन्होंने इसी विषय पर लिखा। ये पुस्तक ग्यारह प्रकरणों में अंकित की गई है। आजकल इनके वंशधर श्रीनगर के मध्यभाग में हब्बाकदल के समीप शशियार में रहते हैं जहां वे स्वयं भी रहते थे। अन्य ग्रन्थों के अतिरिक्त इनकी निम्नलिखित पुस्तकें अधिक विख्यात हैं :

(१) टिप्पणी सहित ब्राह्मी विद्या, (२) स्वात्मदेवस्तोत्रम्, (३)हरीहरस्तोत्रम् आदि-आदि।

क० न० द०

●●●

